1 अपठित बोध

गद्य एवं पद्य का वह अंश जो कभी नहीं पढ़ा गया हो,' अपठित ' कहलाता है। दूसरे शब्दों में ऐसा उदाहण जो पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों से न लेकर किसी अन्य पुस्तक से लिया गया हो, अपठित अंश माना जाता है।

I अपठित गद्यांश

अपठित साहित्यिक गद्यांश के अंतर्गत गद्य-खंड को पढ़कर उससे संबंधित उत्तर देने होते हैं। ये प्रश्नोत्तर गद्यावतरण के शीर्षक, विषय-वस्तु के बोध एवं भाषिक बिन्दुओं को केन्द्र में रखकर पूछे जाते हैं। इस हेतु विद्यार्थियों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- सर्वप्रथम गद्य-खण्ड को कम से कम तीन बार ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिये । समझ न आने पर घबरायें या परेशान न हों, आत्म-विश्वास एवं धैर्य के साथ पुनः पढ़ें ।
- गद्यांश में प्रयुक्त कठिन शब्दों को अलग लिखकर उनका अर्थ समझने का प्रयास करें । यदि अर्थ समझ में नहीं आ रहा हो तो वाक्य के आधार पर अर्थ एवं भाव निकाला जा सकता है ।
- गद्यांश को एकाग्रता से पढ़ने के बाद उसके मूल-भाव को समझना चाहिये ।
- तत्पश्चात् नीचे दिये गये प्रश्नों को पढ़ें एवं प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए गद्यांश को पुनः एक बार पढ़ें । जिन प्रश्नों के उत्तर मिल जायें उन्हें रेखांकित करते जायें ।
- जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पाये हों, उन पर ध्यान केन्द्रित कर अवतरण को फिर से पूर्ण एकाग्रचित्त होकर पढ़ें, उत्तर अवश्य मिल जायेंगे क्योंकि सभी प्रश्नों के उत्तर गद्यांश के अन्तर्गत ही होते हैं ।
- प्रश्नों के उत्तर लिखते समय सरल एवं मौलिक भाषा का ही प्रयोग करें, न कि गद्यांश को उतारें ।
- गद्य-खण्ड में प्रयुक्त उद्धरण-चिह्न (inverted comma) का प्रयोग अपने उत्तरों में नहीं करना चाहिये ।
- गद्यांश का शीर्षक अत्यन्त छोटा, सार्थक एवं मूल-भाव पर केन्द्रित होना चाहिये ।
- यदि गद्यांश में रेखांकित शब्दों के अर्थ अथवा उनकी व्याख्या पूछी जाये तो प्रसंग के अनुसार ही उनका अर्थ एवं व्याख्या करनी चाहिये । अपनी ओर से शब्दों तथा उदाहरणों का प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

[**नोट**- विद्यार्थियों के मार्गदर्शन हेतु नीचे कुछ अपठित गद्यांश (हल सहित) दिए जा रहे हैं। प्रत्येक प्रश्न के लिए उत्तर-सीमा 20-30 शब्द है।]

प्रश्नोत्तर सहित अपठित गद्यांश

प्रश्न–नीचे दिए गए गद्यांश को सावधानीपूर्वक पढ़िए तथा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. *मनुष्य समाज की इकाई है और परिवार उसका अभिन्न अंग है। अतः सर्वप्रथम पारिवारिक शान्ति, सद्भाव और प्रेम इसलिए आवश्यक है कि उनके द्वारा वह अपने आपको समाज के हित चिंतन में लगा सके। जिस समाज में मनुष्य परस्पर मिलकर कार्य करते हैं, वहाँ उस देश में श्री, सम्पन्नता और समृद्धि स्वतः ही उपलब्ध होती*

है। वस्तुतः वह देश निःसन्देह प्रशंसनीय है, जिसके निवासियों में देश के प्रति गर्व की भावना विद्यमान हो तथा मातृभूमि पर स्वाभिमान हो और सह-अस्तित्व और बन्धुत्व की भावना जाग्रत हो। ऐसे देश में सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समृद्धियाँ निरंतर व्याप्त रहती हैं। (उ. मा. शि. बो. 2018)

प्रश्न— 1. समाज के कल्याण के लिए मनुष्य को क्या करना आवश्यक है?

2. किसी देश को प्रशंसनीय बनाने में किन तत्वों का योगदान होता है।

उत्तर— 1. सामाजिक कल्याण के लिए मनुष्य को सर्वप्रथम अपने परिवार में शान्ति, सद्भाव और प्रेम का वातावरण बनाना आवश्यक होता है।

2. किसी देश को प्रशंसनीय बनाने में उसके निवासियों में देश पर गर्व, मातृभूमि पर स्वाभिमान और सह अस्तित्व तथा बन्धुत्व की भावना का योगदान हुआ करता है।

2. भारतवर्ष सदा कानून को धर्म के रूप में देखता आ रहा है। आज एकाएक कानून और धर्म में अंतर कर दिया गया है। धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है। यही कारण है कि जो लोग धर्मभीरु हैं, वे कानून की त्रुटियों से लाभ उठाने में संकोच नहीं करते। इस बात के पर्याप्त प्रमाण खोजे जा सकते हैं कि समाज के ऊपरी वर्ग में चाहे जो भी होता रहा हो, भीतर-भीतर भारतवर्ष अब भी यह अनुभव कर रहा है कि धर्म, कानून से बड़ी चीज है। अब भी सेवा, ईमानदारी, सच्चाई और आध्यात्मिकता के मूल्य बने हुए हैं। वे दब अवश्य गए हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुए। आज भी वह मनुष्य से प्रेम करता है, महिलाओं का सम्मान करता है, झूठ और चोरी को गलत समझता है, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने को पाप समझता है। हर आदमी अपने व्यक्तिगत जीवन में इस बात का अनुभव करता है।

प्रश्न— 1. कानून को धर्म के रूप में देखने का क्या आशय है?

2. भारतवर्ष के लोग धर्म की किन बातों को आज भी मानते हैं?

उत्तर— 1. भारत में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। धार्मिक निषेधों का उल्लंघन नहीं होता था। ऐसा करने से लोग डरते थे। कानून को भी धर्म के समान ही मानकर उसका पालन करना जरूरी समझा जाता था। धर्मभीरु लोग कानून की कमी का लाभ नहीं उठाते थे।

2. भारतवर्ष के लोग आज भी धर्म की अनेक बातों को मानते हैं। समाज में ईमानदारी, सच्चाई और आध्यात्मिकता को उच्च स्थान प्राप्त है। मनुष्यों से प्रेम करना, महिलाओं का आदर करना, झूठ बोलने से बचना, चोरी न करना तथा दूसरों को न सताना आदि धार्मिक सदुपदेशों को लोग आज भी मानते हैं।

3. यदि मनुष्य और पशु के बीच कोई अंतर है तो केवल इतना कि मनुष्य के भीतर विवेक है और पशु विवेकहीन है। इसी विवेक के कारण मनुष्य को यह बोध रहता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। इसी विवेक के कारण मनुष्य यह समझ पाता है कि केवल खाने-पीने और सोने में ही जीवन का अर्थ और इति नहीं। केवल अपना पेट भरने से ही जगत के सभी कार्य संपन्न नहीं हो जाते और यदि मनुष्य का जन्म मिला है तो केवल इसी चीज का हिसाब रखने के लिए नहीं कि इस जगत ने उसे क्या दिया है और न ही यह सोचने के लिए कि यदि इस जगत ने उसे कुछ नहीं दिया तो वह इस संसार के भले के लिए कार्य क्यों करे। मानवता का बोध कराने वाले इस गुण 'विवेक' की जननी का नाम 'शिक्षा' है। शिक्षा जिससे अनेक रूप समय के परिवर्तन के साथ इस जगत में बदलते रहते हैं, वह जहाँ कहीं भी विद्यमान रही है सदैव अपना कार्य करती रही है। यह शिक्षा ही है जिसकी धुरी पर यह संसार चलायमान है। विवेक से लेकर विज्ञान और ज्ञान की जन्मदात्री शिक्षा ही तो है। शिक्षा हमारे भीतर विद्यमान वह तत्त्व है जिसके बल पर हम बात करते हैं, कार्य करते हैं, अपने मित्रों और शत्रुओं की सूची तैयार करते हैं, उलझनों को सुलझनों में बदलते हैं।

प्रश्न— 1. मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ?

2. शिक्षा से क्या आशय है? इसके क्या लाभ हैं?

उत्तर— 1. मनुष्य विवेकशील प्राणी है। विवेक के कारण वह उचित और अनुचित में अन्तर करके उचित को अपनाने तथा अनुचित को त्यागने में समर्थ होता है। पशु में विवेक नहीं होता और वह उचित-अनुचित का विचार नहीं कर सकता।

2. सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। शिक्षा मनुष्य में विवेक उत्पन्न करती है। शिक्षा ज्ञान-विज्ञान की जन्मदात्री है। शिक्षा ही मनुष्य को सद्व्यवहार सिखाती है। शत्रु-मित्र की पहचान कराती है, समस्याओं का हल बताती है।

4. *साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है । कर्म-सौंदर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं । जिन कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है, उन सबके प्रति उत्कण्ठापूर्ण आनन्द उत्साह के अन्तर्गत लिया जाता है । कष्ट या हानि के भेद के अनुसार उत्साह के भी भेद हो जाते हैं । साहित्य-मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर इत्यादि भेद किए हैं । इनमें सबसे प्राचीन और प्रधान युद्ध वीरता है, जिसमें आघात, पीड़ा या मृत्यु की परवाह नहीं रहती । इस प्रकार की वीरता का प्रयोजन अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है, जिसमें साहस और प्रयत्न दोनों चरम उत्कर्ष पर पहुँचते हैं । साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुरित नहीं होता । उसके साथ आनन्दपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कण्ठा का योग चाहिए । बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं । इसी प्रकार चुपचाप बिना हाथ-पैर हिलाये, घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस और कठिन प्रहार सहकर भी जगह से ना हटना धीरता कही जायेगी । ऐसे साहस और धीरता को उत्साह के अन्तर्गत तभी ले सकते हैं, जबकि साहसी या धीर उस काम को आनन्द के साथ करता चला जायेगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं ।*

प्रश्न— 1. उत्साह क्या है तथा उत्साही किसको कहते हैं ?

2. साहस और धीरता को उत्साह के अन्तर्गत किस दशा में लिया जा सकता है ?

उत्तर— 1. उत्साह साहसपूर्ण आनन्द की उमंग को कहते हैं। उत्साह में कष्टों को दृढ़तापूर्वक सहन करना तथा कर्म में लगने का आनन्द-दोनों ही पाए जाते हैं। कष्ट सहन करते हुए कार्य में लगे रहकर आनन्द का अनुभव करने वाले को उत्साही कहते हैं।

2. साहस और धीरता को उत्साह के अन्तर्गत तभी लिया जा सकता है जब कोई साहसी और धैर्यवान पुरुष किसी ऐसे काम को प्रसन्नता और आनन्द के साथ करता रहे जिसके कारण उसे बहुत कष्ट उठाने पड़े हों।

5. *महानगरों में भीड़ होती है, समाज या लोग नहीं बसते। भीड़ उसे कहते हैं जहाँ लोगों का जमघट होता है। लोग तो होते हैं लेकिन उनकी छाती में हृदय नहीं होता; सिर होते हैं, लेकिन उनमें बुद्धि या विचार नहीं होता। हाथ होते हैं, लेकिन उन हाथों में पत्थर होते हैं, विध्वंस के लिए वे हाथ निर्माण के लिए नहीं होते। यह भीड़ एक अंधी गली से दूसरी गली की ओर जाता है, क्योंकि भीड़ में होने वाले लोगों का आपस में कोई रिश्ता नहीं होता। वे एक-दूसरे के कुछ भी नहीं लगते। सारे अनजान लोग इकट्ठा होकर विध्वंस करने में एक-दूसरे का साथ देते हैं, क्योंकि जिन इमारतों, बसों या रेलों में ये तोड़-फोड़ के काम करते हैं, वे उनकी नहीं होतीं और न ही उनमें सफर करने वाले उनके अपने होते हैं। महानगरों में लोग एक ही बिल्डिंग में पड़ोसी के तौर पर रहते हैं, लेकिन यह पड़ोस भी संबंधरहित होता है। पुराने जमाने में दही जमाने के लिए जामन माँगने पड़ोस में लोग जाते थे, अब हर फ्लैट में फ्रिज है, इसलिए जामन माँगने जाने की भी जरूरत नहीं रही। सारा पड़ोस, सारे संबंध इस फ्रिज में 'फ्रीज' रहते हैं।*

प्रश्न— 1. 'महानगरों में भीड़ होती है, समाज या लोग नहीं बसते'-इस वाक्य का आशय क्या है ?

2. सारे संबंध इस फ्रिज में 'फ्रीज' रहते हैं—ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—1. महानगरों में विशाल संख्या में लोग निवास करते हैं। उनमें पारस्परिक सामाजिक संबंध नहीं होते हैं। वे एक दूसरे को जानते नहीं, आपस में मिलते-जुलते भी नहीं हैं। पास रहने पर भी वे एक दूसरे के पड़ोसी नहीं होते।

2. फ्रिज खाद्य पदार्थों को ठंडा रखने के लिए प्रयोग होने वाला एक यंत्र है। आधुनिक समाज में परस्पर संबंधों में गर्माहट नहीं रही है। लोग एक ही बिल्डिंग में रहते हैं परन्तु पड़ोसी से उनके सम्बन्ध ही नहीं होते वे एक-दूसरे को जानते तक नहीं हैं।

6. *भोजन का असली स्वाद उसी को मिलता है जो कुछ दिन बिना खाए भी रह सकता है। 'जीवन का भोग त्याग के साथ करो।' यह केवल परमार्थ का ही उपदेश नहीं है, क्योंकि संयम से भोग करने पर जीवन में जो आनंद प्राप्त होता है, वह निरा भोगी बनकर भोगने से नहीं मिलता है। अकबर ने तेरह साल की उम्र में अपने बाप के दुश्मन*

को परास्त कर दिया था जिसका कारण था अकबर का जन्म रेगिस्तान में होना और उसके पिता के पास एक कस्तूरी को छोड़कर और कोई दौलत नहीं थी। महाभारत के अधिकांश वीर कौरवों के पक्ष में थे, मगर जीत पांडवों की हुई, क्योंकि उन्होंने लाक्षागृह की मुसीबत झेली थी। उन्होंने वनवास के जोखिम को पार किया था। श्री विंस्टन चर्चिल ने कहा है कि जिंदगी की सबसे बड़ी सिफत हिम्मत है। आदमी के और सारे गुण उसके हिम्मती होने से ही पैदा होते हैं।

प्रश्न— 1. भोजन का असली स्वाद किसको मिलता है?

2. 'जीवन का भोग त्याग के साथ करो'—आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. भोजन का असली स्वाद उस व्यक्ति को मिलता है जो कुछ दिन भूखा रह सकता है। जिसका पेट भरा है वह भोजन का आनन्द ले ही नहीं सकता, न उसका लाभ ही उठा सकता है।

2. जीवन में भोग से सुख तभी मिल सकता है जब मनुष्य संयम के मार्ग पर चले। संसार जो कुछ है वह सब केवल एक ही मनुष्य के लिए नहीं है, दूसरों को भी उसकी आवश्यकता है तथा उस पर उनका भी अधिकार है, यह सोचकर उनके लिए त्याग करने से ही उपभोग का आनन्द प्राप्त होता है।

7. शहादत और मौन-मूक! जिस शहादत को शोहरत मिली, जिस बलिदान को प्रसिद्धि प्राप्त हुई, वह इमारत का कंगूरा है- मंदिर का कलश है। हाँ, शहादत और मौन मूक! समाज की आधारशिला यही होती है। ईसा की शहादत ने ईसाई धर्म को अमर बना दिया, आप कह लीजिए। किंतु मेरी समझ से ईसाई धर्म को अमर बनाया उन लोगों ने, जिन्होंने उस धर्म के प्रचार में अपने को अनाम उत्सर्ग कर दिया। उनमें से कितने जिंदा जलाए गए, कितने सूली पर चढ़ाए गए, कितने वन-वन की खाक छानते जंगली जानवरों के शिकार हुए, कितने उससे भी भयानक भूख-प्यास के शिकार हुए। उनके नाम शायद ही कहीं लिखे गए हों-उनकी चर्चा शायद ही कहीं होती हो किंतु ईसाई धर्म उन्हीं के पुण्य-प्रताप से फल-फूल रहा है, वे नींव की ईंट थे, गिरजाघर के कलश उन्हीं की शहादत से चमकते हैं। आज हमारा देश आजाद हुआ सिर्फ उनके बलिदानों के कारण नहीं, जिन्होंने इतिहास में स्थान पा लिया है। हम जिसे देख नहीं सकें, वह सत्य नहीं है, यह है मूक धारणा! ढूँढ़ने से ही सत्य मिलता है। हमारा काम है, धर्म है, ऐसी नींव की ईंटों की ओर ध्यान देना। सदियों के बाद नए समाज की सृष्टि की ओर हमने पहला कदम बढ़ाया है।

प्रश्न— 1. लेखक के अनुसार 'नीव की ईंट' कौन हैं? उदाहरण सहित समझाइए।

2. लेखक की दृष्टि में देश की आजादी में किन लोगों का विशिष्ट योगदान रहा?

उत्तर— 1. लेखक के अनुसार 'नींव की ईंट' अर्थात प्रमुख आधार वे हैं। जो बिना किसी शोहरत की चाहत के अपने आपको किसी नेक काम के लिए कुर्बान कर दिया। उदाहरण स्वरूप ईसाई धर्म को उन लोगों ने अमर बनाया जिन्होंने इस धर्म के प्रचार में अपना अनाम उत्सर्ग कर दिया। ईसाई धर्म उन्हीं के पुण्य-प्रताप से फल-फूल रहा है।

2. लेखक की दृष्टि में देश की आजादी में उन लोगों का विशिष्ट योगदान रहा जो इतिहास में स्थान पाये बिना देश हित हेतु बलिदान हो गए। इसीलिए लेखक कहता है कि देश केवल उनके कारण आजाद नहीं हुआ जिन्होंने इतिहास में स्थान पा लिया है बल्कि देश नींव की ईंटों के कारण आजाद हुआ।

8. अहिंसा और कायरता कभी साथ नहीं चलतीं। मैं पूरी तरह शस्त्र-सज्जित मनुष्य के हृदय से कायर होने की कल्पना कर सकता हूँ। हथियार रखना कायरता नहीं तो डर का होना तो प्रकट करता ही है, परन्तु सच्ची अहिंसा शुद्ध निर्भयता के बिना असम्भव है।

क्या मुझ में बहादुरों की वह अहिंसा है? केवल मेरी मृत्यु ही इसे बताएगी। अगर कोई मेरी हत्या करे और मैं मुँह से हत्यारे के लिए प्रार्थना करते हुए तथा ईश्वर का नाम जपते हुए और हृदय-मन्दिर में उसकी जीती-जागती उपस्थिति का भान रखते हुए मरूँ तो ही कहा जाएगा कि मुझ में बहादुरों की अहिंसा थी। मेरी सारी शक्तियों के क्षीण हो जाने से अपंग बनकर मैं एक हारे हुए आदमी के रूप में नहीं मरना चाहता। किसी हत्यारे की गोली भले मेरे जीवन का अन्त कर दे, मैं उसका स्वागत करूँगा। लेकिन सबसे ज्यादा तो मैं अन्तिम श्वास तक अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए ही मरना पसन्द करूँगा।

मुझे शहीद होने की तमन्ना नहीं है । लेकिन अगर धर्म की रक्षा का उच्चतम कर्तव्य-पालन करते हुए मुझे शहादत मिल जाए तो मैं उसका पात्र माना जाऊँगा । भूतकाल में मेरे प्राण लेने के लिए मुझ पर अनेक बार आक्रमण किए गए हैं; परन्तु आज तक भगवान ने मेरी रक्षा की है और प्राण लेने का प्रयत्न करने वाले अपने किए पर पछताए हैं । लेकिन अगर कोई आदमी यह मानकर मुझ पर गोली चलाए कि वह एक दुष्ट का खात्मा कर रहा है, तो वह एक सच्चे गांधी की हत्या नहीं करेगा, बल्कि उस गांधी की करेगा जो उसे दुष्ट दिखाई दिया था ।

प्रश्न– 1. महात्मा गांधी सच्ची अहिंसा के लिए मनुष्य में किस गुण का होना आवश्यक मानते हैं ? इस प्रकार की अहिंसा को उन्होंने क्या नाम दिया है ?

2. गांधीजी को किस प्रकार मरना पसन्द था ?

उत्तर– 1. महात्मा गाँधी मानते हैं कि सच्ची अहिंसा के लिए मनुष्य में निर्भीकता का होना आवश्यक है । इस प्रकार की अहिंसा को उन्होंने बहादुरों की अहिंसा का नाम दिया है । शस्त्रधारी मनुष्य के मन में कायरता या भीरुता हो सकती है किन्तु सच्चा अहिंसक व्यक्ति सदा निर्भय होता है ।

2. गाँधीजी को अपना कर्तव्य-पालन करते हुए मरना पसन्द था । वह अपनी शक्ति क्षीण होने से अपंग बनकर एक हारे हुए आदमी की तरह मरना नहीं चाहते थे । वह अपने हत्यारे को क्षमा करके, ईश्वर की मूर्ति अपने मन में धारण कर तथा ईश्वर का नाम लेते हुए मरना चाहते थे ।

9. वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों का विघटन चहुँओर दिखाई दे रहा है। विलास और भौतिकता के मद में भ्रांत लोग बेतहाशा धनोपार्जन की अंधी दौड़ में शामिल हो गए हैं। आज का मानव स्वार्थपरता में इस तरह आकंठ डूब चुका है कि उसे उचित-अनुचित, नीति-अनीति का भान नहीं हो रहा है। व्यक्ति विशेष की निजी स्वार्थपूर्ति से समाज का कितना अहित हो रहा है, इसका शायद किसी को आभास नहीं है। आज के अभिभावक भी धनोपार्जन एवम् भौतिकता के साधन जुटाने में इतने लीन हैं कि उनके वात्सल्य का स्रोत ही उनके लाड़लों के लिए सूख गया है। उनकी इस उदासीनता ने मासूम दिलों को गहरे तक चीर दिया है। आज का बालक अपने एकाकीपन की भरपाई या तो घर में दूरदर्शन केबिल से प्रसारित अश्लील फूहड़ कार्यक्रमों से करता है अथवा कुसंगति में पड़कर जीवन का नाश करता है। समाज के इस संक्राति-काल में छात्र किन जीवन मूल्यों को सीख पाएगा, यह कहना नितान्त कठिन है।

जब-जब समाज पथभ्रष्ट हुआ है, तब-तब युग सर्जक की भूमिका का निर्वाह शिक्षकों ने बखूबी किया है। आज की दशा में भी जीवन मूल्यों की रक्षा का गुरुतर दायित्व शिक्षक पर ही आ जाता है। वर्तमान स्थिति में जीवन मूल्यों के संस्थापन का भार शिक्षकों के ऊपर है, क्योंकि आज का परिवार बालक के लिए सद्गुणों की पाठशाला जैसी संस्था नहीं रह गया है जहाँ से बालक एक संतुलित व्यक्तित्व की शिक्षा पा सके। शिक्षक विद्यालय परिसर में छात्र के लिए आदर्श होता है।

प्रश्न– 1. आज के समाज में बालकों के सामने क्या समस्या है तथा इसका कारण क्या है?

2. आज परिवार को बालक के लिए पहली पाठशाला क्यों नहीं माना जा सकता?

उत्तर–1. आज समाज में बच्चों के सामने एकाकीपन की समस्या है क्योंकि उनके माता-पिता अपना पूरा समय धन कमाने में लगा देते हैं। बच्चों के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करने के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता।

2. बालक पहला पाठ परिवार में ही पढ़ता है। मानवीय सद्गुण तथा सद्व्यवहार की शिक्षा उसे परिवार से ही प्राप्त होती है। इस कारण परिवार को बालक को पहली पाठशाला कहा जाता है किन्तु आज बच्चों के माता-पिता के पास भी परिवार में बच्चों के साथ रहने का समय नहीं है। अतः परिवार को बच्चों की पहली पाठशाला कहना उचित नहीं है।

10. जिन प्रवृत्तियों में प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य बढ़ता है, वह वांछनीय होती हैं, जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती हैं, वे दूषित हैं । अहंकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं । यदि हम इनको बेरोक-टोक चलने दें, तो निःसंदेह वह हमें नाश और पतन की ओर ले जायेंगी, इसलिए हमें उनकी लगाम रोकनी

पड़ती है, उन पर संयम रखना पड़ता है, जिससे वे अपनी सीमा से बाहर न जा सकें । हम उन पर जितना कठोर संयम रख सकते हैं, उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो जाता है ।

किन्तु नटखट लड़कों से डाँटकर कहना–तुम बड़े बदमाश हो, हम तुम्हारे कान पकड़कर उखाड़ लेंगे–अक्सर व्यर्थ ही होता है, बल्कि उस प्रवृत्ति को और हठ की ओर ले जाकर पुष्ट कर देता है । जरूरत यह होती है कि बालक में जो सद्वृत्तियाँ हैं, उन्हें ऐसा उत्तेजित किया जाय कि दूषित वृत्तियाँ स्वाभाविक रूप में शान्त हो जायें । इसी प्रकार मनुष्य को भी आत्मविकास के लिए संयम की आवश्यकता होती है । साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है । सत्य को रसों द्वारा हम जितनी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान और विवेक द्वारा नहीं कर सकते, उसी भाँति जैसे दुलार-पुचकारकर बच्चों को जितनी सफलता से वश में किया जा सकता है, डाँट-फटकार से सम्भव नहीं । कौन नहीं जानता कि प्रेम से कठोर-से-कठोर प्रकृति को नरम किया जा सकता है । साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है।

प्रश्न— 1. मनुष्य की वे कौन-सी प्रवृत्तियाँ हैं जिन पर संयम रखना आवश्यक है तथा क्यों ?

2. सद्वृत्तियों को जगाने में साहित्य का क्या योगदान है ?

उत्तर— 1. अहंकार, क्रोध तथा द्वेष इत्यादि कुछ मानवीय दुष्प्रवृत्तियाँ हैं । इन पर नियन्त्रण या संयम रखना आवश्यक है। ये प्रकृति के साथ मनुष्य के सामंजस्य में बाधा डालती हैं । इनको बिना नियन्त्रण के चलने देने से मनुष्य का जीवन पतन और विनाश के गर्त में गिर जाता है ।

2. साहित्य मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है । जब सद्वृत्तियाँ जाग उठती हैं तो दुष्प्रवृत्तियाँ स्वत: ही प्रभावहीन हो जाती हैं । अत: सद्वृत्तियों को प्रबल बनाकर ही बुरी वृत्तियों को रोका जा सकता है । इसमें साहित्य बहुत अधिक उपयोगी है ।

11. अपने इतिहास के अधिकांश कालों में भारत एक सांस्कृतिक इकाई होते हुए भी पारस्परिक युद्धों से जर्जर होता रहा। यहाँ के शासक अपने शासन-कौशल में धूर्त एवं असावधान थे। समय-समय पर यहाँ दुर्भिक्ष, बाढ़ तथा प्लेग के प्रकोप होते रहे, जिसमें सहस्रों व्यक्तियों की मृत्यु हुई।

जन्मजात असमानता धर्मसंगत मानी गई, जिसके फलस्वरूप नीच कुल के व्यक्तियों का जीवन अभिशाप बन गया। इन सबके होते हुए भी हमारा विचार है कि पुरातन संसार के किसी भी भाग में मनुष्य के मनुष्य से तथा मनुष्य के राज्य से ऐसे सुंदर एवं मानवीय संबंध नहीं रहे हैं। किसी भी अन्य प्राचीन सभ्यता में गुलामों की संख्या इतनी कम नहीं रही जितनी भारत में और न ही अर्थशास्त्र के समान किसी प्राचीन न्याय ग्रंथ ने मानवीय अधिकारों की इतनी सुरक्षा की। मनु के समान किसी अन्य प्राचीन स्मृतिकार ने युद्ध में न्याय के ऐसे उच्चादर्शों की घोषणा भी नहीं की। हिन्दूकालीन भारत के युद्धों के इतिहास में कोई भी ऐसी कहानी नहीं है जिसमें नगर के नगर तलवार के घाट उतारे गए हों अथवा शान्तिप्रिय नागरिकों का सामूहिक वध किया गया हो। असीरिया के बादशाहों की भयंकर क्रूरता जिसमें वे अपने बंदियों की खालें खिंचवा लेते थे, प्राचीन भारत में पूर्णतः अप्राप्य है। निःसन्देह कहीं-कहीं क्रूरता एवं कठोरतापूर्ण व्यवहार था, परंतु अन्य प्रारंभिक संस्कृतियों की अपेक्षा यह नगण्य था। हमारे लिए प्राचीन भारतीय सभ्यता की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी मानवीयता है।

प्रश्न— 1. इतिहास के अधिकांश काल में भारत के कमजोर बने रहने का क्या कारण है ?

2. प्राचीन भारतीय सभ्यता को सर्वाधिक मानवीय कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—1. इतिहास के अधिकांश कालों में भारत कमजोर बना रहा है। इसका कारण यह है कि यहाँ के शासक शासन में अकुशल और लापरवाह थे। वे आपस में छोटी-छोटी बातों पर लड़ते रहते थे। इस कारण प्रजा बाढ़, अकाल और महामारियों से त्रस्त रहती थी।

2. प्राचीन भारतीय सभ्यता अपने समय की अन्य सभ्यताओं की तुलना में सबसे ज्यादा मानवीय थी। 'अर्थशास्त्र' तथा 'मनुस्मृति' जैसे न्याय ग्रन्थों में मानवीय अधिकारों की सुरक्षा का प्रयास हुआ है। विदेशी शासकों द्वारा शान्तिप्रिय नागरिकों के सामूहिक वध तथा अमानवीय दमन जैसे उदाहरण भारत के इतिहास में नहीं मिलते।

12. निर्लिप्त रहकर दूसरों का गला काटने वालों से लिप्त रहकर दूसरों की भलाई करने वाले कहीं अच्छे हैं—क्षात्रधर्म एकान्तिक नहीं है, उसका सम्बन्ध लोकरक्षा से है । अतः वह जनता के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करने वाला है । 'कोई राजा होगा तो अपने घर का होगा'..... इससे बढ़कर झूठ बात शायद ही कोई और मिले । झूठे खिताबों के द्वारा यह कभी सच नहीं की जा सकती । क्षात्र जीवन के व्यापकत्व के कारण ही हमारे मुख्य अवतार–राम और कृष्ण– क्षत्रिय हैं । कर्म–सौन्दर्य की योजना जितने रूपों में क्षात्र जीवन में सम्भव है, उतने रूपों में और किसी जीवन में नहीं । शक्ति के साथ क्षमा, वैभव के साथ विनय, पराक्रम के साथ रूप–माधुर्य, तेज के साथ कोमलता, सुखभोग के साथ परदुःख कातरता, प्रताप के साथ कठिन धर्म–पथ का अवलम्बन इत्यादि कर्म–सौन्दर्य के इतने अधिक प्रकार के उत्कर्ष–योग और कहाँ घट सकते हैं ? इस व्यापार युग में, इस वणिग्धर्म–प्रधान युग में, क्षात्रधर्म की चर्चा करना शायद गई बात का रोना समझा जाय पर आधुनिक व्यापार की अनन्य रक्षा भी शस्त्रों द्वारा ही की जाती है । क्षात्रधर्म का उपयोग कहीं नहीं गया है– केवल धर्म के साथ उसका असहयोग हो गया है ।

प्रश्न– 1. क्षात्रधर्म क्या है ? उसमें कर्म सौन्दर्य कितने रूपों में दिखाई देता है ?

2. 'वणिग्धर्म' किसको कहा गया है तथा क्यों ? आधुनिक व्यापार की रक्षा किसके द्वारा होती है?

उत्तर– 1. क्षत्रिय का कर्तव्य ही क्षात्रधर्म है। शक्ति के साथ क्षमा, वैभव के साथ विनय, पराक्रम के साथ सुन्दर रूप, तेज के साथ कोमलता, सुखभोग के साथ दु:खियों से सहानुभूति, प्रताप के साथ धर्म पथ का अवलम्बन आदि कर्म सौन्दर्य के रूप क्षात्रधर्म में दिखाई देते हैं।

2. व्यापारी के काम को वणिग्धर्म कहा गया है। इसमें धनोपार्जन मुख्य है। आज लोगों का ध्यान मानवीयता के स्थान पर धन कमाने में लगा हुआ है। लेखक के अनुसार आधुनिक व्यापार की रक्षा भी शस्त्रों द्वारा ही होती है।

13. बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश में मानव स्वाभाविकता से कटकर कृत्रिमता और आडम्बरों की भीड़ में खोता जा रहा है । वास्तविकता को छिपाकर सुसभ्यता और सुसंस्कृति के नाम पर झूठे दिखावों और ढोंगों को पालता जा रहा है । जटिल परिवेश में लोकजीवन की सरस अभिव्यक्ति को ढूँढ़ पाना असंभव नहीं, तो दुष्कर मात्र बन गया है । महानगरों में रहने पर आदमी अपने को अकेला, छोटा, खोया हुआ, रुग्ण, असहाय और अपरिचित महसूस कर रहा है । ''जितना बड़ा नगर उतना ही असहाय–पराश्रित, सोने–जगने, बैठने–उठने, आने–जाने, हँसने–रोने, हर स्थिति में एक मशीनी व्यवस्था द्वारा संचालित । यह नागरिक जीवन का अभिशाप है ।'' सर्वत्र मनुष्य स्वच्छन्द होता जा रहा है । मानवीय व्यवहार में अकल्पनीय परिवर्तन हुआ है । जिनसे आदर्श की अपेक्षा करें वे ही आपत्तिजनक आचरण करते नजर आ रहे हैं। संयुक्त परिवार आधुनिकता की बलि चढ़ गया तो उत्तर आधुनिकता ने एकल परिवार पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है । मूल्यों के ह्रास का ग्राफ गिरता जा रहा है । उपभोक्तावाद ने सामाजिक मूल्य का चोला ग्रहण किया है । भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार बन गया है । भौतिकता अब प्रतिष्ठा की बात बन गई है ।

प्रश्न– 1. आज मानव-समाज में लोकजीवन की सरस अभिव्यक्ति को ढूँढ़ना कठिन क्यों हो गया है?

2. बदलते परिवेश का परिवार नामक संस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? आज प्रतिष्ठा की बात क्या बन गई है?

उत्तर– 1. लोगों के सीधे-सच्चे आचरण में सरसता व्यक्त होती है। आज सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश बदल गया है। मनुष्य वास्तविकता को छिपाकर झूठा दिखावा कर रहा है। इस बनावटी व्यवहार में मधुरता और सरसता का भारी अभाव हो गया है।

2. बदलते परिवेश से परिवार नामक संस्था भी प्रभावित हुई है। आधुनिकता के प्रभाव से संयुक्त परिवार तो मिट ही गए हैं। अब तो एकल परिवार का अस्तित्व भी खतरे में है। आज भौतिकता प्रतिष्ठा की बात बन गई है।

14. कर्तव्य–पालन और सत्यता में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । जो मनुष्य अपना कर्तव्य–पालन करता है, वह अपने कामों और वचनों में सत्यता का बर्ताव भी रखता है । वह ठीक समय पर उचित रीति से अच्छे कामों को करता है । सत्यता ही एक ऐसी वस्तु है, जिससे इस संसार में मनुष्य अपने कार्यों में सफलता पा सकता है; क्योंकि संसार

में कोई कार्य झूठ बोलने से नहीं चल सकता। यदि किसी के घर सब लोग झूठ बोलने लगें तो उस घर में कोई कार्य न हो सकेगा और सब लोग बड़ा दुःख भोगेंगे। इसलिए हम लोगों को अपने कार्यों में झूठ का बर्ताव नहीं करना चाहिए। अतएव सत्यता को सबसे ऊँचा स्थान देना उचित है। संसार में जितने पाप हैं, झूठ उन सबों से बुरा है। झूठ की उत्पत्ति पाप, कुटिलता और कायरता के कारण होती है। बहुत-से लोग सच्चाई का इतना थोड़ा ध्यान रखते हैं कि अपने सेवकों को स्वयं झूठ बोलना सिखाते हैं। पर उनको इस बात पर आश्चर्य करना और क्रुद्ध न होना चाहिए, जब उनके नौकर भी उनसे अपने लिए झूठ बोलें।

बहुत-से लोग नीति और आवश्यकता के बहाने झूठ की रक्षा करते हैं। वे कहते हैं कि इस समय इस बात को प्रकाशित न करना और दूसरी बात को बनाकर कहना, नीति के अनुसार समयानुकूल और परम आवश्यक है। फिर बहुत-से लोग किसी बात को 'सत्य-सत्य' कहते हैं कि जिससे सुनने वाला यह समझे कि यह बात सत्य नहीं, वरन् इसका जो उल्टा है वही सत्य होगा। इस प्रकार से बातों का कहना झूठ बोलने के पाप से किसी प्रकार कम नहीं है।

प्रश्न— 1. कर्तव्य-पालन और सत्य में क्या सम्बन्ध है ?

2. नीति और आवश्यकता के बहाने झूठ की रक्षा कैसे की जाती है?

उत्तर—1. कर्तव्य-पालन करने वाले मनुष्य अपने जीवन तथा कार्यों में सत्य का व्यवहार करते हैं। कोई भी कार्य सत्य के बिना ठीक तरह नहीं हो सकता। कर्तव्य पालन और सत्यता में गहरा सम्बन्ध है। वे सत्य पर चलकर ही अपना कर्तव्य सफलतापूर्वक निभाते हैं।

2. कुछ लोग झूठ बोलते हैं तो कहते हैं कि इस समय झूठ बोलना नीति के अनुसार है अथवा इस समय झूठ बोलने की आवश्यकता है। इस प्रकार के झूठ बोलने को सही ठहराते हैं।

15. *मानव जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास ही शिक्षा का उद्देश्य है। मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक प्रकार की शक्तियाँ अन्तर्निहित रहती हैं, शिक्षा इन्हीं शक्तियों का उद्घाटन करती है। मानवीय व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने का कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्पन्न होता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक मानव ने जो प्रगति की है, उसका सर्वाधिक श्रेय मनुष्य की ज्ञान-चेतना को ही दिया जा सकता है। मनुष्य में ज्ञान-चेतना का उदय शिक्षा द्वारा ही होता है। बिना शिक्षा के मनुष्य का जीवन पशु-तुल्य होता है। शिक्षा ही अज्ञानरूपी अंधकार से मुक्ति दिलाकर ज्ञान का दिव्य आलोक प्रदान करती है।*

प्रश्न— 1. शिक्षा का उद्देश्य किसे बताया गया है और क्यों ?

2. आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक मानव ने जो प्रगति की है, उसका कारण क्या है?

उत्तर—1. मनुष्य के जीवन को हर प्रकार से विकसित करना ही शिक्षा का उद्देश्य बताया गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व में छिपी शक्तियों को शिक्षा उद्घाटित करती है और उसे विकास के योग्य बनाती है।

2. लेखक के अनुसार आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक मानव ने जो प्रगति की है, उसका सबसे अधिक श्रेय मानव की ज्ञान-चेतना को जाता है। ज्ञान-चेतना का उदय शिक्षा के द्वारा होता है। शिक्षा ही अज्ञानरूपी अंधकार से निजात दिलाती है और मानव को दिव्य आलोक प्रदान करती है।

16. *धर्म का वास्तविक गुण तब प्रकट होता है जब हम जीवन का सत्य जानने के लिए और इस दुनिया की दया और क्षमा योग्य वस्तुओं में वृद्धि के लिए निरन्तर खोज करते हैं और सतत् अनुसन्धान करते हैं। अनुसन्धान या खोज की लगन और उन उद्देश्यों का विस्तार जिन्हें हम प्रेम अर्पण करते हैं—ये वास्तविक रूप में आध्यात्मिक मनुष्य के दो पक्ष होते हैं। हमें सत्य की खोज तब तक करते रहना चाहिए जब तक करते रहना चाहिए जब तक हम उसे पा न लें और उससे हमारा साक्षात्कार न हो। जो कुछ भी हो, मनुष्य में वही तत्त्व मौजूद हैं, अतः वह हमारे प्यार और हमारी सद्भावना का अधिकारी है। समाज और सारी सभ्यता केवल इस बात का प्रयास है कि मनुष्य आपस में सद्भाव के साथ रह सकें। हम इस प्रयास को तब तक बनाए रखते हैं। जब तक सारी दुनिया हमारा अपना परिवार न बन जाए।*

प्रश्न– 1. धर्म का वास्तविक गुण कब प्रकट होता है?

2. मनुष्यों को आपस में सद्भाव का प्रयास कब तक करते रहना चाहिए ?

उत्तर–1. धर्म का वास्तविक गुण उस समय प्रकट होता है जब हम जीवन का सत्य जानने के लिए तथा इस संसार की दया और क्षमा योग्य वस्तुओं की वृद्धि करने के लिए निरन्तर खोज करते हैं। निरन्तर अनुसंधान में लगे रहकर ही हम धर्म के वास्तविक गुण को जान पाते हैं।

2. सभी मनुष्यों को आपस में सद्भाव के साथ रहने का प्रयास उस समय तक करते रहना चाहिए जब तक कि सारी दुनिया उसका परिवार न बन जाय। आशय यह है कि मन में 'विश्व-बंधुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव पैदा न हो तब तक हमको सबके साथ सद्भाव रखने का अभ्यास करना चाहिए।

17. *गाँधीजी के अनुसार शिक्षा, शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का विकास करने का माध्यम है। वे 'बुनियादी शिक्षा' के पक्षधर थे। उनके अनुसार प्रत्येक बच्चे को अपनी मातृभाषा की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा मिलनी चाहिए, जो उसके आस-पास की जिन्दगी पर आधारित हो; हस्तकला एवं काम के जरिए दी जाए; रोजगार दिलाने के लिए बच्चे को आत्मनिर्भर बनाए तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने वाली हो। गाँधीजी के उक्त विचारों से स्पष्ट है कि वे व्यक्ति और समाज के सम्पूर्ण जीवन पर अपनी मौलिक दृष्टि रखते थे तथा उन्होंने अपने जीवन में सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेकर भारतीय समाज एवं राजनीति में इन मूल्यों को स्थापित करने की कोशिश की। गाँधीजी की सारी सोच भारतीय परम्परा की सोच है तथा उनके दिखाए मार्ग को अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति और सम्पूर्ण राष्ट्र वास्तविक स्वतंत्रता, सामाजिक सद्भाव एवं सामुदायिक विकास को प्राप्त कर सकता है। भारतीय समाज जब-जब भटकेगा तब-तब गाँधीजी उसका मार्गदर्शन करने में सक्षम रहेंगे।*

प्रश्न– 1. गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक बच्चे को किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए ?

2. गाँधीजी की सोच कैसी है? इससे हमें क्या लाभ होगा?

उत्तर–1. गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक बच्चे को अपनी मातृभाषा की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिए। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उसका शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास कर सके तथा उसको भावी जीवन में रोजगार दिलाकर आत्मनिर्भर बनाने तथा नैतिकता और आध्यात्मिकता का ज्ञान करा सके।

2. गाँधीजी की सम्पूर्ण सोच भारतीय परम्परा की सोच है। उनके बताए गए रास्ते पर चलकर हर एक व्यक्ति और राष्ट्र वास्तविक स्वतन्त्रता, सामाजिक सद्भाव व सामुदायिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। वस्तुतः भारतीय समाज जब-जब भटकेगा तब-तब गाँधी जी उसका मार्गदर्शन करने में सक्षम होंगे।

18. *भिखारी की भाँति गिड़गिड़ाना प्रेम की भाषा नहीं है। यहाँ तक कि मुक्ति के लिए भगवान की उपासना करना भी अधम उपासना में गिना जाता है। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता। प्रेम में आतुरता नहीं होती। प्रेम सर्वथा प्रेम के लिए ही होता है। भक्त इसलिए प्रेम करता है कि बिना प्रेम किए वह रह ही नहीं सकता। जब हम किसी प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस पर मुग्ध हो जाते हैं तो उस दृश्य से हम किसी फल की याचना नहीं करते और न वह दृश्य ही हमसे कुछ चाहता है; तो भी वह दृश्य हमें बड़ा आनन्द देता है। वह हमारे मन को पुलकित और शान्त कर देता है और हमें साधारण सांसारिकता से ऊपर उठाकर एक स्वर्गीय आनन्द से सराबोर कर देता है। इसलिए प्रेम के बदले कुछ माँगना प्रेम का अपमान करना है। प्रेम करना नंगी तलवार की धार पर चलने जैसा है क्योंकि स्वार्थ के लिए, दिखाने के लिए तो सभी प्रेम करते हैं, उसे निभाते नहीं। वे पाना चाहते हैं, देना नहीं। वे वस्तुतः प्रेम शब्द को कलंकित करते हैं।*

प्रश्न– 1. मुक्ति के लिए भगवान की उपासना करना कैसी उपासना है तथा क्यों?

2. प्रेम करना नंगी तलवार की धार पर चलने के समान क्यों है?

उत्तर–1. मुक्ति के लिए भगवान की उपासना करना अधम उपासना है, क्योंकि इस उपासना में उपासक का स्वार्थ निहित है और वह बदले में पुरस्कार चाहता है। सच्चा प्रेम निःस्वार्थ होता है तथा बदले में कुछ नहीं चाहता।

2. प्रेम में त्याग भाव का होना आवश्यक है। उसमें प्रेम करने वाले को अपना सब कुछ दूसरे के हित में समर्पित करना होता है। सच्चा प्रेम अपनी नहीं अपने प्रिय की भलाई चाहता है। अत: प्रेम करना नंगी तलवार की धार पर चलने के समान है।

19. *स्वास्थ्य सभी जीवधारियों के आनन्दमय जीवन की कुंजी है; क्योंकि स्वास्थ्य के बिना जीवधारियों की समस्त क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ रुक जाती हैं, शिथिल हो जाती हैं। जीवन को जल भी इसीलिए कहा जाता है। जिस प्रकार रुका जल सड़ जाता है, दुर्गन्धियुक्त हो जाता है, ठीक इसी प्रकार शिथिल और कर्महीन जीवन से स्वास्थ्य खो जाता है। स्वास्थ्य और खेल-कूद का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। पशु-पक्षी हों या मनुष्य, जो खेलता-कूदता नहीं, वह उत्फुल्ल और प्रसन्न रह ही नहीं सकता। जब हम खेलते हैं तो हम में नया प्राणावेग, नई स्फूर्ति और नई चेतना आ जाती है। हम देखते हैं कि हवा के झोंके एक-दूसरे का पीछा करते हुए दूर-दूर तक दौड़ते हैं, वृक्षों की शाखाओं को हिला-हिलाकर अठखेलियाँ करते हैं। आकाश में उड़ते पक्षी तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं। हमें भी जीवन-जगत् से प्रेरणा लेते हुए खुले मन से खेल-कूद में भाग लेना चाहिए।*

प्रश्न— 1. जीवन को जल क्यों कहा गया है?

2. स्वस्थ जीवन के लिए खेलकूद क्यों आवश्यक है?

उत्तर—1. जल को जीवन इसलिये कहा गया है, क्योंकि जैसे प्रवाह रुकने पर जल सड़ जाता है, वैसे ही अकर्मण्य जीवन भी मनुष्य को अस्वस्थ बना देता है। स्वास्थ्य नष्ट होने पर मनुष्य की सभी क्रियाएँ रुक जाती हैं और वह जीवन का आनन्द नहीं ले पाता है।

2. स्वस्थ जीवन के लिए खेलकूद आवश्यक है। पशु-पक्षी या मनुष्य जो खेलता-कूदता नहीं, वह प्रसन्न नहीं रह सकता। खेलने से मनुष्य में नई चेतना, नई स्फूर्ति तथा नई ऊर्जा आते हैं। प्रकृति में सभी प्राणी खेलकूद में भाग लेते हैं।

20. *जिन्दगी को ठीक से जीना हमेशा ही जोखिम झेलना है और जो आदमी सकुशल जीने के लिए जोखिम का हर जगह एक घेरा डालता है, वह अंतत: अपने ही घेरों के बीच कैद हो जाता है और जिन्दगी का कोई मजा उसे नहीं मिल पाता; क्योंकि जोखिम से बचने की कोशिश में, असल में उसने जिन्दगी को ही आने से रोक रखा है। जिन्दगी से अन्त में हम उतना ही पाते हैं जितनी कि उसमें पूँजी लगाते हैं। यह पूँजी लगाना जिन्दगी के संकटों का सामना करना है, उसके उस पन्ने को उलटकर पढ़ना है जिसके सभी अक्षर फूलों से नहीं, कुछ अंगारों से भी लिखे गए हैं। जिन्दगी का भेद कुछ उसे ही मालूम है जो यह जानकर चलता है कि जिन्दगी कभी न खत्म होने वाली चीज है।*

अरे! ओ जीवन के साधको! अगर किनारे की मरी हुई सीपियों से ही तुम्हें सन्तोष हो जाए तो समुद्र के अन्तराल में छिपे हुए मौक्तिक-कोष को कौन बाहर लाएगा? कामना का अंचल छोटा मत करो, जिन्दगी के फल को दोनों हाथों से दबाकर निचोड़ो, रस की निर्झरी तुम्हारे बहाए भी बह सकती है।

प्रश्न— 1. जिन्दगी को ठीक से जीने का क्या उपाय है?

2. आशय स्पष्ट कीजिए—'जिन्दगी से अन्त में हम उतना ही पाते हैं जितनी कि उसमें पूँजी लगाते हैं।'

उत्तर—1. जिन्दगी को ठीक से जीना जीवन का सच्चा सुख प्राप्त करना है। इसका उपाय जीवन में जोखिम उठाना है। जीवन में आने वाले संकटों का साहस के साथ सामना करके ही जीवन का सुख प्राप्त किया जा सकता है।

2. 'जिन्दगी से अन्त में हम उतना ही पाते हैं जितनी कि उसमें पूँजी लगाते हैं।' इस वाक्य का आशय यह है कि अपने जीवन में हम जितना अधिक जोखिम उठाएँगे हमारा जीवन उतना ही सफल और सुखमय हो सकेगा ।

21. *बौद्ध-युग अनेक दृष्टियों से आज के आधुनिकता-आन्दोलन के समान था। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध बुद्ध ने विद्रोह का प्रचार किया था, जाति-प्रथा के बुद्ध विरोधी थे और मनुष्य को वे जन्मना नहीं, कर्मणा श्रेष्ठ या अधम मानते थे। नारियों को भिक्षुणी होने का अधिकार देकर उन्होंने यह बताया था कि मोक्ष केवल पुरुषों के ही निमित्त नहीं है, उसकी अधिकारिणी नारियाँ भी हो सकती हैं। बुद्ध की ये सारी बातें भारत को याद रही हैं और बुद्ध के समय से बराबर इस देश में ऐसे लोग उत्पन्न होते रहे हैं, जो जाति-प्रथा के विरोधी थे, जो मनुष्य को जन्मना नहीं,*

कर्मणा श्रेष्ठ या अधम समझते थे, किन्तु बुद्ध में आधुनिकता से बेमेल बात यह थी कि वे निवृत्तिवादी थे, गृहस्थी के कर्म से वे भिक्षु-धर्म को श्रेष्ठ समझते थे। उनकी प्रेरणा से देश के हजारों-लाखों युवक, जो उत्पादन बढ़ाकर समाज का भरण-पोषण करने के लायक थे, संन्यासी हो गए। संन्यास की संस्था समाज-विरोधिनी संस्था है।

प्रश्न— 1. बौद्ध-युग किन बातों में आधुनिकता आन्दोलन के समान था?

2. संन्यास को समाज विरोधी कहने का क्या कारण है?

उत्तर—1. बौद्ध युग निम्नलिखित बातों में आधुनिकता आन्दोलन के समान है, क्योंकि—

(i) वह ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध है। (ii) बौद्ध युग में जाति-प्रथा की मान्यता नहीं है। (iii) मनुष्य को जन्म से नहीं कर्म से श्रेष्ठ या अधम माना जाता है। (iv) स्त्रियों को भी पुरुषों के समान माना गया है। उनको भी मुक्ति के लिए भिक्षुणी होने का अधिकार है।

2. संन्यास को समाज-विरोधी संस्था कहा गया है, क्योंकि हजारों-लाखों युवक जो श्रम करके समाजोपयोगी तथा हितकर कार्य कर सकते हैं, खेतों तथा कारखानों में उत्पादन बढ़ाकर लोगों का भरण-पोषण कर सकते हैं, वे संन्यासी बनकर समाज के लिए अनुपयोगी तथा भारस्वरूप हो जाते हैं। संन्यास से व्यक्ति का हित हो सकता है परन्तु समाज का कोई हित नहीं होता।

22. *आजकल विचारकों का ध्यान इस सवाल की ओर बार-बार जाता है कि आज से सौ-पचास वर्ष बाद भारत का रूप क्या होने वाला है? क्या वह ऐसा भारत होगा, जिसे विवेकानन्द और गाँधी पहचान सकेंगे अथवा बदलकर वह पूरा-का-पूरा अमेरिका और यूरोप बन जाएगा? पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों से भारत आधुनिकता की ओर बढ़ता जा रहा है? लेकिन समझा यह जाता है कि भारत अब भी आधुनिक देश नहीं है। वह मध्यकालीनता से आच्छन्न है। स्वतन्त्रता के बाद से आधुनिकता का प्रश्न अत्यन्त प्रखर हो रहा है, क्योंकि चिन्तक यह मानते हैं कि हमने अगर आधुनिकता का वरण शीघ्रता के साथ नहीं किया, तो हमारा भविष्य अंधकारपूर्ण हो जाएगा। अतएव यह प्रश्न विचारणीय है कि आधुनिक बनने पर भारत का कौन-सा रूप बचने वाला है और कौन मिट जाने वाला है।*

नैतिकता, सौन्दर्य-बोध और अध्यात्म के समान आधुनिकता का कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। सच पूछिए तो वह मूल्य है ही नहीं, वह केवल समय-सापेक्ष धर्म है। नवीन युग समय-समय पर आते ही रहते हैं और जैसे आज के नए जमाने पर आज के लोगों को गर्व है, उसी तरह हर जमाने के लोग अपने जमाने पर गर्व करते रहे हैं। संसार का कोई भी समाज किसी भी समय इतना स्वाभाविक नहीं रहा कि हर आदमी को पसन्द हो और कोई समाज ऐसा भी नहीं बना है जिसके बाद का काल उसका आलोचक न रहा हो।

प्रश्न— 1. आजकल विचारकों का ध्यान किस ओर बार-बार जाता है?

2. आधुनिकता के सम्बन्ध में लेखक का क्या मत है?

उत्तर—1. आजकल विचारकों का ध्यान बार-बार इस सवाल की ओर जाता है कि सौ-पचास सालों बाद भारत का रूप कैसा होने वाला है? क्या उसका रूप ऐसा होगा कि उसे गाँधी और विवेकानन्द पहचान सकेंगे अथवा वह बदलकर पूरी तरह यूरोप या अमेरिका बन जायेगा?

2. लेखक का मत है कि आधुनिकता का नैतिकता, सौन्दर्य-बोध तथा अध्यात्म की भाँति कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। सच में तो आधुनिकता का कोई मूल्य ही नहीं है। वह तो एक समय के अनुसार स्वीकार किया गया धर्म है। प्रत्येक युग अपने समय में आधुनिक होता है तथा उस समय के कुछ लोग उस पर गर्व करते हैं तथा कुछ उससे असन्तुष्ट होते हैं और उसकी आलोचना करते हैं।

23. *सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो सम्पूर्ण देश में एक अद्भुत समानता दिखाई पड़ती है। सारे देश में विभिन्न देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। इन सबमें प्रायः एक-सी पूजा पद्धति चलती है। सभी धार्मिक लोगों में व्रत-त्योहारों को मनाने की एक-सी प्रवृत्ति है। वेद, रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों पर धार्मिक अनुष्ठान कर्म आया तो उसके भी अनुसरण पर सारे देश में विपुल साहित्य की रचना की गई। जब इस्लाम धर्म आया तो उसके भी अनुयायी सारे देश में फैल गए। इसी प्रकार ईसाई धर्मावलम्बी सम्पूर्ण देश में पाये जाते हैं। इससे सारा देश वस्तुतः एक ही सूत्र में बँधा हुआ है। भारतीय संस्कृति में ढले प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पहचान है। इस पहचान के कारण इस देश के लोग एक-दूसरे से अपना भिन्न अस्तित्व रखते हैं। विभिन्न प्रकार के रहन-सहन तथा पहनावे के होने पर भी सारा देश*

वस्तुतः एक ही है। यह सांस्कृतिक एकता ही वस्तुतः इस देश की वह शक्ति है जिससे इतना बड़ा देश एक सूत्र में बँधा हुआ है। विविधता में एकता की इस विशेषता पर सभी भारतीय गर्व करते हैं तथा इस पर संसार दंग है।

प्रश्न— 1. भारत में सांस्कृतिक एकता किस रूप में दिखाई देती है?

2. भारत की किस विशेषता पर भारतीय गर्व करते हैं?

उत्तर—1. भारत में सांस्कृतिक एकता अनेक रूपों में दिखाई देती है। सारे देश में हिन्दू, सिख, ईसाई तथा मुस्लिम लोग मिलकर रहते हैं। एक-दूसरे के त्योहारों में भाग लेते हैं। सभी के उपासना स्थल सारे देश में विद्यमान हैं।

2. विविधता में एकता भारत की ऐसी विशेषता है, जिस पर हर भारतीय गर्व कर सकता है। संसार के अन्य देश भारत की इस विशेषता को देखकर चकित हो जाते हैं।

24. कुछ लोगों को अपने चारों ओर बुराइयाँ देखने की आदत होती है। उन्हें हर अधिकारी भ्रष्ट, हर नेता बिका हुआ और हर आदमी चोर दिखाई पड़ता है। लोगों की ऐसी मनःस्थिति बनाने में मीडिया का भी हाथ है। माना कि बुराइयों को उजागर करना मीडिया का दायित्व है, पर उसे सनसनीखेज बनाकर 24×7 चैनलों में बार-बार प्रसारित कर उनकी चाहे दर्शक-संख्या (जत्च) बढ़ती हो, आम आदमी इससे अधिक शंकालु हो जाता है और यह सामान्यीकरण कर डालता है कि सभी ऐसे हैं। आज भी सत्य और ईमानदारी का अस्तित्व है। ऐसे अधिकारी हैं जो अपने सिद्धान्तों को रोजी-रोटी से बड़ा मानते हैं। ऐसे नेता भी हैं जो अपने हित की अपेक्षा जनहित को महत्त्व देते हैं। वे मीडिया-प्रचार के आकांक्षी नहीं हैं। उन्हें कोई इनाम या प्रशंसा के सर्टीफिकेट नहीं चाहिए, क्योंकि उन्हें लगता है कि वे कोई विशेष बात नहीं कर रहे हैं बस कर्तव्यपालन कर रहे हैं। ऐसे कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिकों से समाज बहुत-कुछ सीखता है। आज विश्व में भारतीय बेईमानी या भ्रष्टाचार के लिए कम, अपनी निष्ठा, लगन और बुद्धि-पराक्रम के लिए अधिक जाने जाते हैं।

प्रश्न— 1. लोगों की सोच को बनाने-बदलने में मीडिया की क्या भूमिका है?

2. वर्तमान समय में सत्य और ईमानदारी की क्या स्थिति है? आज दुनिया में भारतीय किन गुणों के लिए जाने जाते हैं?

उत्तर—1. लोगों की सोच को बनाने और बदलने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मीडिया में किसी समाचार को बार-बार पढ़ने या देखने से लोग उससे अवश्य प्रभावित होते हैं। जनमत के निर्माण में मीडिया का विशेष योगदान होता है।

2. वर्तमान समय में भी सत्य और ईमानदारी का अस्तित्व है। ऐसे अधिकारी और नेता आज भी हैं जो अपने सिद्धांतों को रोजी-रोटी से बड़ा मानते हैं। आज दुनिया में भारतीय बेईमानी और भ्रष्टाचार के लिए कम बल्कि अपनी निष्ठा, लगन और बुद्धिमत्ता के लिए अधिक जाने जाते हैं।

25. आज भारतीय समाज में दहेज के नग्न नृत्य को देखकर किसी भी समाज और देश के हितैषी का हृदय लज्जा और दुःख से भर उठेगा। इस प्रथा से केवल व्यक्तिगत हानि हो, ऐसी बात नहीं। इससे समाज और राष्ट्र को महान हानि पहुँचती है। तड़क-भड़क, शान-शौकत के प्रति आकर्षण से धन का अपव्यय होता है। समाज की क्रियाशील और उत्पादक पूँजी व्यर्थ नष्ट होती है। जीवन में भ्रष्टाचार की वृद्धि होती है। नारी के सम्मान पर चोट होती है। आत्महत्या और आत्महीनता की भावनाएँ जन्म लेती हैं। परन्तु इस अभिशाप से मुक्ति का उपाय क्या है? इसके दो पक्ष हैं—जनता और शासन। शासन कानून बनाकर इसे समाप्त कर सकता है और कर भी रहा है, किन्तु बिना जन-सहयोग के ये कानून प्रभावी नहीं हो सकते। इसके लिए महिला वर्ग को और कन्याओं को स्वयं संघर्षशील बनना होगा, स्वावलम्बिनी और स्वाभिमानिनी बनना होगा। ऐसे वरों का तिरस्कार करना होगा, जो उन्हें धन-प्राप्ति का साधन मात्र समझते हैं। इसके साथ ही धर्माचार्यों का भी दायित्व है कि वे अपने लोभ के कारण समाज को संकट में न डालें। अविवाहित कन्या के घर में रहने से मिलने वाला नरक, जीते-जी प्राप्त नरक से अच्छा रहेगा। हमारी कन्याएँ हमसे विद्रोह करें और हम मजबूरन सही रास्ते पर आयें, इससे तो यही अच्छा होगा कि हम पहले ही सँभल जायें।

प्रश्न— 1. दहेज प्रथा के व्यक्ति और समाज पर क्या कुप्रभाव होते हैं ?

2. दहेज प्रथा की समाप्ति के लिए महिलाओं और कन्याओं को क्या करना होगा ?

उत्तर—1. दहेज-प्रथा से व्यक्ति का जीवन दुश्चिंता, अपमान और तनाव से भर जाता है। सामाजिक जीवन में धन के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और असमानता की समस्यायें पनपती हैं।

2. दहेज-प्रथा की समाप्ति के लिए महिलाओं और कन्याओं को संघर्षशील, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी बनना होगा। उन्हें दहेज-लोभियों का तिरस्कार और बहिष्कार करना होगा।

26. *महाराणा प्रताप जंगल-जंगल मारे फिरते थे, अपनी स्त्री और बच्चों को भूख से तड़पते देखते थे, परन्तु उन्होंने उन लोगों की बात न मानी जिन्होंने उन्हें अधीनतापूर्वक जीते रहने की सम्मति दी, क्योंकि वे जानते थे कि अपनी मर्यादा की चिन्ता जितनी स्वयं को हो सकती है, उतनी दूसरे को नहीं। एक बार एक रोमन राजनीतिज्ञ, बलवाइयों के हाथ में पड़ गया। बलवाइयों ने उससे व्यंग्यपूर्वक पूछा, "अब तेरा किला कहाँ है?" उसने हृदय पर हाथ रखकर उत्तर दिया, "यहाँ।" ज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यही बड़ा भारी गढ़ है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों में दूसरों का सहारा चाहते हैं, जो सदा एक-न-एक नया अगुआ ढूँढ़ा करते हैं और उनके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-संस्कार के कार्य में उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उनका अंधभक्त न होना सीखना चाहिए। तुलसीदास जी को लोक में इतनी सर्वप्रियता और कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन इतना महत्त्वमय और शान्तिमय रहा, सब इसी मानसिक स्वतन्त्रता, निर्द्वन्द्वता और आत्मनिर्भरता के कारण। वहीं उनके समकालीन केशवदास को देखिए जो जीवन भर विलासी राजाओं के हाथ की कठपुतली बने रहे, जिन्होंने आत्म-स्वतन्त्रता की ओर कम ध्यान दिया और अन्त में आप अपनी बुरी गति की।*

प्रश्न— 1. राणाप्रताप ने किन लोगों की बात नहीं मानी और क्यों ?

2. तुलसीदास और केशवदास के जीवन में क्या अन्तर था और क्यों ?

उत्तर—1. महाराणा प्रताप ने उन लोगों की बात नहीं मानी, जो उनसे अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए कहते थे। प्रताप जानते थे कि अपनी मर्यादा की चिन्ता जितनी हम स्वयं कर सकते हैं, उतना कोई दूसरा नहीं करता। अधीनता से मर्यादा को चोट पहुँचती है।

2. केशवदास ने राज्याश्रय स्वीकार किया था, अत: वह अपने मन के अनुकूल काव्य रचना नहीं कर सके थे। इसके विपरीत तुलसीदास किसी के अधीन नहीं थे। वह मन से स्वाधीन थे। अत: एक लोकप्रिय प्रसिद्ध कवि बन सके।

27. *ततः किम्! मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिये डाँटता है। किसी दिन, कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि यह अब भी नाखून को जिलाये जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कम्बख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अन्धे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर युग का कोई अवशेष रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है? वह तो उसका नवीनतम रूप है! मैं मनुष्य के नाखूनों की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशविक वृत्ति के जीवन प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।*

प्रश्न— 1. बर्बर युग का अन्त अभी भी क्यों नहीं हुआ है ?

2. लेखक मनुष्य के नाखूनों को देखकर कभी-कभी निराश क्यों हो जाता है ?

उत्तर— 1. बर्बर युग का अंत अभी भी नहीं हुआ है क्योंकि मनुष्य को नाखून से कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मनुष्य की बर्बरता घटी नहीं है बल्कि अस्त्रों के अवतार से वह नवीनतम् रूप में आ गई है।

2. मनुष्य के नाखूनों को देखकर लेखक को इसलिए निराशा होती है कि नाखूनों का बढ़ना उसकी भयंकर पशु-प्रकृति को बताता है। मनुष्य की पशुता बार-बार काटने पर भी मरती नहीं।

28. *कठिनाइयों और बाधाओं के होते हुए भी मैं ईश्वर के प्रति अनुगृहीत हूँ कि संसार में जितनी दुःख की मात्रा है उसको देखते हुए मुझे अपने हिस्से से बहुत कम मिला है; किन्तु इस विषय में मैं साम्यवादी नहीं बनना चाहता हूँ और न मेरे साम्यवादी मित्र ही दुःख का साम्यवादी बँटवारा चाहेंगे। इसी कारण मैं सुख और वैभव में साम्यवादी बनने के लिए बहुत उत्सुक नहीं हूँ। मैंने दूध का हर एक रूप में स्वागत किया है (सपरेटा को छोड़कर)। दूध मैंने गरम ही पीना चाहा है। असावधानी मेरा जन्मगत दोष है, क्योंकि वसन्त से एक दिन पूर्व ही मैं इस संसार में आया; किन्तु मैं उससे (दूध से) जला नहीं हूँ इसलिए छाछ को फूँक-फूँककर पीने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जीवन में पर्याप्त लापरवाही रही। अनियमितता ही मेरे जीवन का नियम और विधान रहा। जीने के लिए जितने खाने की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक खाया। रसना का संयम मैं न कर सका। मैं सब चीजों का आस्वाद लेकर 'रसना' शब्द को सार्थक करता रहता हूँ। मैं न खाने के लिए जिया और न मैंने जीने के लिए खाया, वरन् इसलिए खाया कि खाना भी जीवन का सदुपयोग है। किन्तु मैं मर्यादा से बाहर नहीं हुआ।*

प्रश्न— 1. लेखक किस विषय में साम्यवादी बनना नहीं चाहता?

2. 'छाछ को फूँक-फूँक कर पीने की आवश्यकता नहीं पड़ी' इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. संसार में जितना दु:ख है उससे बहुत कम दु:ख लेखक के हिस्से में आया है परन्तु लेखक दु:ख के सम्बन्ध में साम्यवादी बनना नहीं चाहता। दु:ख और सुख सभी को बराबर मिलें यह नहीं चाहता।

2. इस कथन का आशय है कि लेखक को जीवन में कभी विशेष कष्ट या धोखा नहीं झेलना पड़ा। इसलिए वह हर बात में संशय और सावधानी नहीं बरतता।

29. *भीष्म ने दूसरे पक्ष की उपेक्षा की थी। वह 'सत्यस्य वचनम्' को 'हित' से अधिक महत्त्व दे गये। एक बार गलत-सही जो कह दिया उसी से चिपट जाना 'भीषण' हो सकता है, हितकर नहीं! भीष्म ने 'भीषण' को ही चुना था।*

भीष्म और द्रोण भी, द्रोपदी का अपमान देखकर भी क्यों चुप रह गये? द्रोण गरीब अध्यापक थे, बाल-बच्चे वाले थे। गरीब ऐसे कि गाय भी नहीं पाल सकते थे। बिचारी ब्राह्मणी को चावल का पानी देकर दूध माँगने वाले बच्चे को फुसलाना पड़ा था। उसी अवस्था में फिर लौट जाने का साहस कम लोगों में होता है, पर भीष्म तो पितामह थे। उन्हें बाल-बच्चों की फिक्र भी नहीं थी, भीष्म को क्या परवाह थी? एक कल्पना यह की जा सकती है कि महाभारत की कहानी जिस रूप में प्राप्त है, वह उसका बाद का परिवर्तित रूप है। शायद पूरी कहानी जैसी थी वैसी नहीं मिली है, लेकिन आजकल के लोगों को आप जो चाहे कह लें, पुराने इतिहासकार इतने गिरे हुए नहीं होंगे कि पूरा इतिहास ही पलट दें। सो, इस कल्पना से भी भीष्म की चुप्पी समझ में नहीं आती। इतना सच जान पड़ता है कि भीष्म में कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय में कहीं कोई कमजोरी थी। वह उचित अवसर पर उचित निर्णय नहीं ले पाते थे।

प्रश्न— 1. भीष्म ने किस पक्ष की उपेक्षा की थी?

2. पुराने इतिहासकारों के बारे में लेखक का क्या मानना है? इनके सन्दर्भ में भीष्म की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. भीष्म ने परहित तथा जनहित के पक्ष की उपेक्षा की। उन्होंने अपनी विवाह न करने की प्रतिज्ञा के सत्य को ही महत्त्वपूर्ण माना। भीष्म ने सत्य के भीषण पक्ष को चुना और सत्य के जनहितकारी पक्ष की उपेक्षा की।

2. पुराने इतिहासकारों के बारे में लेखक का यह मानना है कि वे इस सीमा तक पक्षपात नहीं कर सकते कि सम्पूर्ण तथ्य को ही बदल दें। ऐसे इतिहासकारों के रहते भीष्म की चुप्पी समझ से परे है। लेखक का मानना है कि भीष्म द्वारा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय लेने में कहीं कोई कमजोरी थी। यही कारण था कि वे उचित अवसर पर उचित निर्णय नहीं ले पाते थे।

30. *हिरोशिमा और नागासाकी में हुआ भयानक विनाश आज भी रोंगटे खड़े कर देता है। विनाशकारी भूकम्प और सुनामी के कारण जापान में फुकुशिमा दायची परमाणु संयन्त्रों में विस्फोट का तथा विकिरण का खतरा बहुत बढ़ गया था। विद्युत उत्पादन के लिए कोयले पर आधारित थर्मल पावर की जगह परमाणु ऊर्जा अधिक*

साफ-सुथरी तथा अच्छे परिणाम वाली है परन्तु इसमें विकिरण से होने वाले भयानक विनाश का संकट भी है।

परमाणु विकिरण से होने वाला विनाश कल्पना से बाहर की बात है। जापान की त्रासदी के बाद इस पर विचार होने लगा है। भविष्य में ऐसे न्यूक्लियर प्लांट बनाए जा सकते हैं, जो भूकम्प तथा सुनामी का संकट झेल सकें। परन्तु चेर्नोबिल तथा थ्री माइल आइलैंड में तो कोई भूकम्प भी नहीं आया था। भारत परमाणु उद्योग के सुरक्षा सम्बन्धी प्रभावों से निपटने में सक्षम नहीं है। भारत के पास विकिरण सम्बन्धी दुर्घटना से निपटने के लिए कोई आपातकालीन तैयारी भी नहीं है। यह बात दिल्ली के मायापुरी में हुई परमाणु विकिरण की घटना से सिद्ध हो चुकी है। अतः इस प्रकार के संकट की सम्भावना को हल्केपन से लेना उचित नहीं है।

प्रश्न— 1. परमाणु ऊर्जा के सम्बन्ध में लेखक क्या विचार प्रकट करता है?

2. परमाणु ऊर्जा के उपयोग के खतरे के सम्बन्ध में भारत की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. परमाणु ऊर्जा के सम्बन्ध में लेखक सशंकित है। उसकी दृष्टि में विद्युत उत्पादन के लिए कोयले पर आधारित थर्मल पावर के स्थान पर परमाणु ऊर्जा अधिक साफ-सुथरी और अच्छे परिणाम वाली है लेकिन इसमें विकिरण से होने वाले भयानक विनाश का संकट भी है।

2. भारत में परमाणु विकिरण सम्बन्धी दुर्घटना से बचने के लिए आपातकालीन तैयारी का अभाव है। इसका उदाहरण दिल्ली के मायापुरी नामक स्थान पर हुई परमाणु विकिरण सम्बन्धी घटना है। लेखक के मत में संकट की सम्भावना को हल्के में लेना कदापि उचित नहीं है।

31. चिन्ता को लोग चिता कहते हैं। जिसे किसी प्रचण्ड चिन्ता ने पकड़ लिया है, उस बेचारे की जिन्दगी ही खराब हो जाती है। किन्तु ईर्ष्या शायद चिन्ता से भी बदतर चीज है क्योंकि वह मनुष्य के मौलिक गुणों को ही कुण्ठित बना डालती है।

मृत्यु शायद, फिर भी श्रेष्ठ है, बनिस्पत इसके कि हमें अपने गुणों को कुण्ठित बनाकर जीना पड़े। चिन्ता-दग्ध व्यक्ति समाज की दया का पात्र है। किन्तु ईर्ष्या से जला-भुना आदमी जहर की एक चलती-फिरती गठरी के समान है, जो हर जगह वायु को दूषित करती फिरती है।

ईर्ष्या मनुष्य का चारित्रिक दोष ही नहीं है, प्रत्युत इससे मनुष्य के आनन्द में भी बाधा पड़ती है। जब भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या का उदय होता है, सामने का सुख उसे मद्धिम-सा दिखने लगता है। पक्षियों के गीत में जादू नहीं रह जाता और फूल तो ऐसे हो जाते हैं, मानो वे देखने के योग्य ही न हों।

आप कहेंगे कि निन्दा के बाण से अपने प्रतिद्वन्द्वियों को बेधकर हँसने में एक आनन्द है और यह आनन्द ईर्ष्यालु व्यक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार है। मगर, यह हँसी मनुष्य की नहीं, राक्षस की हँसी होती है और यह आनन्द भी दैत्यों का आनन्द होता है।

प्रश्न— 1. ईर्ष्या का क्या काम है? चिन्ता तथा ईर्ष्या में क्या अन्तर है?

2. ईर्ष्या का लाभदायक पक्ष कौन-सा है?

उत्तर—1. ईर्ष्या का काम जलाना है। यह उसी को जलाती है जिसके मन में यह पैदा होती है। चिन्ता को चिता कहते हैं। चिन्ताग्रस्त मनुष्य का जीवन बेकार हो जाता है, परन्तु ईर्ष्या चिन्ता से भी अधिक बुरी है। इससे ग्रस्त के मौलिक गुण नष्ट हो जाते हैं।

2. ईर्ष्या का लाभदायक पक्ष यह है कि यह मनुष्य को प्रतिस्पर्द्धा के लिए प्रेरित करती है। इससे ग्रस्त हर आदमी, हर जाति, हर दल अपने प्रतिद्वन्द्वी का समकक्ष बनना चाहता है। ऐसा तभी होता है जब ईर्ष्या से प्राप्त प्रेरणा रचनात्मक हो।

32. जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि की चिंता हमें क्यों सताए और उसके न मिलने से हम निराश क्यों हों? सेवा में जो आध्यात्मिक आनन्द है, वही हमारा पुरस्कार है—हमें समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रौब जमाने की हवस क्यों हो? दूसरों से

ज्यादा आराम से रहने की इच्छा भी हमें क्यों सताए ? हम अमीरों की श्रेणी में अपनी गिनती क्यों करें ? हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं और सादी जिन्दगी के साथ ऊँची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है।

प्रश्न— 1. साहित्य के मंदिर में किनके लिए स्थान नहीं होता ?

2. साहित्यकार को अपने सम्मान की चिंता क्यों नहीं करनी चाहिए ? उनके जीवन का लक्ष्य क्या होता है ?

उत्तर—1. धन-दौलत को महत्त्व देने वाले लोगों के लिए साहित्य के मंदिर में स्थान नहीं है। साहित्य की रचना वही कर सकते हैं, जो सादगीपूर्ण जीवन जीते हैं और धन के पीछे नहीं भागते हैं।

2. साहित्यकार को अपने सम्मान की चिंता नहीं करनी चाहिए। साहित्यकार की रचनाएँ ही उसका सम्मान होती हैं। वह सम्मान के पीछे नहीं भागता। वस्तुतः साहित्यकार समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही है। सादी जिंदगी के साथ ऊँची निगाह उनके जीवन का लक्ष्य होता है।

33. *जिस प्रकार सुखी होने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है, उसी प्रकार मुक्तातंक होने का भी। पर कर्म क्षेत्र के चक्रव्यूह में पड़कर जिस प्रकार सुखी होना प्रयत्न-साध्य होता है उसी प्रकार निर्भय रहना भी। निर्भयता के सम्पादन के लिए दो बातें अपेक्षित होती हैं—पहली तो यह कि दूसरों को हमसे किसी प्रकार का भय या कष्ट न हो, दूसरी यह कि दूसरे हमको कष्ट या भय पहुँचाने का साहस न कर सकें। इनमें से एक का सम्बन्ध उष्कृष्ट शील से है और दूसरी का शक्ति और पुरुषार्थ से। इस संसार में किसी को न डराने से ही डरने की सम्भावना दूर नहीं हो सकती। साधु-से-साधु प्रकृति वाले को क्रूर लोभियों और दुर्जनों से क्लेश पहुँचता है। अतः उनके प्रयत्नों को विफल करने या भय-संचार द्वारा रोकने की आवश्यकता से हम बच नहीं सकते।*

प्रश्न— 1. सुखी होने और आतंक से मुक्त होने के विषय में लेखक का क्या मानना है ?

2. निर्भय रहने के लिए कौन-सी दो बातें आवश्यक होती हैं ?

उत्तर—1. सुखी होने और आतंक से मुक्त होने के विषय में लेखक का यह मानना है कि प्रत्येक प्राणी को जिस प्रकार सुखी होने का अधिकार है, ठीक उसी प्रकार उसे आतंक से मुक्त होने का भी अधिकार है। लेखक के अनुसार कर्म क्षेत्र के चक्रव्यूह में फँसकर जिस प्रकार सुखी होना प्रयत्न साध्य है, ठीक उसी प्रकार निर्भय रहना भी प्रयत्न साध्य है।

2. निर्भय रहने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक, हम किसी को कष्ट न दें तथा भयभीत न करें। दो, दूसरे हमको कष्ट देने या डराने का साहस न करें। अर्थात् निर्भय रहने के लिए मनुष्य को शीलवान् तथा पुरुषार्थी होना चाहिए।

34. *आन्तरिक सुरक्षा को लेकर आज बहुत चिन्ता जताई जा रही है। प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री, सांसद और जनता सभी देश में बढ़ रही आन्तरिक असुरक्षा को लेकर चिंतित नजर आते हैं। देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए दो तत्व खतरा बने हुए हैं। एक देशी-विदेशी आतंकी और दूसरे माओवादी। प्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री मानते हैं कि माओवादी आंतरिक सुरक्षा के लिए आतंकवादियों से भी अधिक बड़ा संकट है। माओवादियों का हिंसा द्वारा सत्ता पर अधिकार करना ही उद्देश्य है। व्यवस्था परिवर्तन और सामाजिक न्याय की आड़ लेकर वे आदिवासियों और युवावर्ग को भ्रमित किए हुए हैं। बढ़ते हुए माओवादी संकट से पार पाने के लिए न तो केन्द्रीय और राज्य सरकारों में दृढ़ इच्छाशक्ति है और न कोई स्पष्ट रणनीति है। आए दिन माओवादी जब-जहाँ चाहते हैं अपना तांडव दिखा देते हैं। पुलिस के लोगों, विधायकों, विदेशियों आदि का अपहरण करके अपनी मनमानी माँगें मानने के लिए सरकार को विवश कर देते हैं।*

प्रश्न— 1. देश की आंतरिक सुरक्षा से क्या तात्पर्य है ? इसके लिए कौन लोग खतरा बने हुए हैं ?

2. सरकार माओवादियों पर पार पाने में क्यों सफल नहीं हो पा रही है ? माओवादी इसका क्या लाभ उठाते हैं ?

उत्तर—1. देश की आंतरिक सुरक्षा से तात्पर्य है—देश के भीतर शांति और व्यवस्था बनाए रखना। आंतरिक सुरक्षा के लिए देशी-विदेशी आतंकवादी तथा माओवादी बड़ा खतरा बने हुए हैं।

2. सरकार में दृढ़ इच्छाशक्ति न होने के कारण तथा कोई स्पष्ट रणनीति न अपनाने के कारण माओवादियों पर पार पाने में सफल नहीं हो पा रही है। परिणामस्वरूप माओवादी अपनी मनमानी माँगें मनवाने के लिए सरकार को विवश कर देते हैं।

अभ्यास के लिए अपठित गद्यांश

● नीचे अभ्यास हेतु कुछ अपठित गद्यांश दिए जा रहे हैं। प्रत्येक के नीचे अंकित प्रश्नों को पढ़िए और उनका उत्तर लिखिए—

1. सभ्यता और तथाकथित संस्कृति लोक-साहित्य की महान् शत्रु है। प्रोफेसर किटरीज ने कहा है—शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। वह उसे इस वेग से नष्ट करती है कि देखकर आश्चर्य होता है। ज्यों ही कोई जाति लिखना-पढ़ना सीख जाती है, त्यों ही वह अपनी परम्परागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है, यहाँ तक कि उनसे थोड़ी-बहुत लज्जा का अनुभव करने लगती है और अंत में उनकी याद रखने तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने की इच्छा एवं शक्ति से भी हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी, वह केवल निरक्षरों की सम्पत्ति रह जाती है और यदि पुरातत्त्व प्रेमियों द्वारा संगृहीत न की जाय तो सदा के लिए विलुप्त हो जाती है।

प्रश्न— 1. लोक-साहित्य को मौखिक साहित्य क्यों कहा गया है ?

2. किसी जाति के पढ़ना-लिखना सीखने पर लोक-साहित्य के प्रति उसमें क्या भावना उत्पन्न हो जाती है ? इसका क्या परिणाम होता है ?

2. हमारे यहाँ सामाजिकता की अपेक्षा पारिवारिकता को महत्त्व दिया गया है। पारिवारिकता को खोकर सामाजिकता को ग्रहण करना तो मूर्खता होगी किन्तु पारिवारिकता के साथ-साथ सामाजिकता बढ़ाना श्रेयस्कर होगा। भाषा और पोशाक में अपनत्व खोना जातीय व्यक्तित्व को तिलांजलि देना होगा। हमें अपनी सम्मिलित परिवार प्रथा को इतना बढ़ा देना चाहिए कि व्यक्ति का व्यक्तित्व ही न रह जाय और न व्यक्ति को इतना महत्त्व देना चाहिए कि गुरुजनों का आदर-भाव ही न रहे और पारिवारिक एकता पर कुठाराघात हो।

प्रश्न— 1. भारत में पारिवारिकता की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

2. परिवार प्रथा विषयक लेखक की मान्यता स्पष्ट कीजिए।

3. भगवान ने अर्जुन से कुरुक्षेत्र में भगवद्गीता कही। पहले भगवद्गीता की 'क्लास' लेकर फिर अर्जुन को कुरुक्षेत्र में नहीं ढकेला। तभी उसे वह गीता पची। हम जिसे जीवन की तैयारी का ज्ञान कहते हैं उसे जीवन से बिल्कुल अलिप्त रखना चाहते हैं, इसलिए उक्त ज्ञान से मौत की ही तैयारी होती है।

बीस बरस का उत्साही युवक अध्ययन में मग्न है। तरह-तरह के ऊँचे विचारों के महल बना रहा है। "मैं शिवाजी महाराज की तरह मातृभूमि की सेवा करूँगा। मैं वाल्मीकि-सा कवि बनूँगा। मैं न्यूटन की तरह खोज करूँगा।" एक, दो, चार, जाने क्या-क्या कल्पना करता है। ऐसी कल्पना करने का सौभाग्य थोड़ों को ही मिलता है। पर जिनको मिलता है; उनकी ही बात लेते हैं। इन कल्पनाओं का आगे क्या नतीजा निकलता है? जब नौन-तेल-लकड़ी के फेर में पड़ा, जब पेट का प्रश्न सामने आया, तब बेचारा दीन बन जाता है। जीवन की जिम्मेदारी क्या चीज है आज तक इसकी बिल्कुल ही कल्पना नहीं थी और अब तो पहाड़ सामने खड़ा हो गया।

प्रश्न— 1. 'पहले भगवद्गीता की क्लास लेकर फिर अर्जुन को कुरुक्षेत्र में नहीं ढकेला'—का आशय प्रकट कीजिए।

2. लेखक के अनुसार आजकल की शिक्षा का क्या दोष है?

4. भारत की एक मूल शक्ति या सामर्थ्य उसकी प्राकृतिक साधन-रूपी बुनियाद है। यद्यपि भारत के पास सब मूल्यवान धातुओं और कच्ची धातुओं का एक-सी गुणवत्ता वाला भण्डार नहीं है, तो भी उनमें से धातुएँ और कच्ची धातुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। स्टील और एल्यूमीनियम की अच्छी कच्ची धातुएँ हमारे पास मौजूद हैं। हमारे पास चमत्कारी धातु टाइटेनियम के अलावा अनेक दुर्लभ भू-धातुएँ भी हैं। यह बात दीगर है कि अभी तक हम उसका

प्रभावशाली प्रयोग नहीं कर पाए हैं। हमारे पास जो विशाल तट रेखा है, उसमें भी बहुत अधिक साधन ऊर्जा प्रदान करने वाले साधनों सहित मौजूद हैं। जैसे-जैसे हम अपने भू-साधनों का अधिकाधिक उपयोग करना आरम्भ करेंगे, वैसे-वैसे वे भविष्य के लिए हमारी शक्तियाँ बन जाएँगे। अपने समुद्रों के तल में छिपे साधनों की खोज अभी होनी शेष है।

काश! हम इस प्राकृतिक उपहार को काम में ला सकते! भारत की प्रौद्योगिकीय परिकल्पना उसके प्राकृतिक साधन, उसके मानव-संसाधन और राष्ट्र की मूल सामर्थ्यों के आधार पर ही प्रतिष्ठित है।

प्रश्न—1. भारत के प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता को समझाइए।

2. भारत की प्रौद्योगिकीय परिकल्पना का आधार स्पष्ट कीजिए।

5. पुरुषार्थ दार्शनिक विषय है, पर दर्शन का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह थोड़े-से विद्यार्थियों का पाठ्य विषयमात्र नहीं है। प्रत्येक समाज को एक दार्शनिक मत स्वीकार करना होगा। उसी के आधार पर उसकी राजनैतिक, सामाजिक और कौटुम्बिक व्यवस्था का व्यूह खड़ा होगा। जो समाज अपने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन को केवल प्रतीपमान्, उपयोगिता के आधार पर चलाना चाहेगा उसको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। एक विभाग के आदर्श दूसरे विभाग के आदर्श से टकराएँगे। जो बात एक क्षेत्र में ठीक जँचेगी वही दूसरे क्षेत्र में अनुचित कहलाएगी और मनुष्य के लिए अपना कर्त्तव्य स्थिर करना कठिन हो जाएगा। इसका तमाशा आज दीख पड़ रहा है। चोरी करना बुरा है, पर पराये देश का शोषण करना बुरा नहीं। झूठ बोलना बुरा है, पर राजनैतिक क्षेत्र में सच बोलने पर अड़े रहना मूर्खता है। घरवालों के साथ, देशवासियों के साथ और परदेशियों के साथ बर्ताव करने के लिए अलग-अलग आचारावलियाँ बन गई हैं। इससे विवेकशील मनुष्य को कष्ट होता है। पग-पग पर धर्म-संकट में पड़ जाता है कि क्या करूँ? कल्याण इसी में है कि खूब सोच-विचार कर एक व्यापक दार्शनिक मत अंगीकार किया जाए और फिर सारे व्यवहार की नींव बनाया जाए। यह असम्भव प्रयत्न नहीं है।

प्रश्न— 1. पुरुषार्थ का जीवन से संबंध स्पष्ट कीजिए।

2. लेखक के अनुसार क्या असम्भव प्रयत्न नहीं है?

II अपठित पद्यांश

अपठित काव्यांश के अंतर्गत काव्य-पंक्तियों का भावार्थ समझकर उत्तर देने होते हैं। इसमें काव्य के भाव-सौन्दर्य पर आधारित प्रश्नोत्तर होते हैं। इस हेतु विद्यार्थियों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

- सर्वप्रथम पूरे काव्यांश को शान्ति के साथ ध्यानपूर्वक पढ़िए।
- यदि उसका भावार्थ समझ में नहीं आ रहा है तो घबरायें नहीं। उसे पुनः पढ़ें। इस बार शब्दों पर ध्यान देकर उनका अर्थ समझने का प्रयास करें।
- आपसे यह आशा नहीं की जाती कि आप पूरी कविता के प्रत्येक शब्द का अर्थ जान लेंगे। इस कारण निराश और व्याकुल होने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब आप काव्यांश के नीचे दिए गए प्रश्नों को पढ़ें तथा उनके उत्तर पद्यांश को पढ़कर तलाश करने का प्रयत्न करें।
- एक-दो बार के प्रयत्न से प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे। काव्यांश का स्थूल भाव समझ में आने पर प्रश्नों का उत्तर देने में सरलता होगी।
- प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट शब्दों में लिखें। यदि पद्यांश की किसी पंक्ति में प्रतीक के माध्यम से कोई बात कही गई हो तो उसको स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उत्तर कुछ विस्तार से लिखा जा सकता है।
- अपठित काव्यांश का उत्तर देते समय अपना आत्मविश्वास बनाए रखें।

अपठित पद्यांश

1. निम्न अपठित काव्यांश को पढ़कर दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1.

कार्य आदि में अवश्य अंत को विचारिए।
हानि-लाभ, ऊँच-नीच, बुद्धि से निहारिए।।
भाइयो? स्वदेश बीच पूर्ण प्रीति कीजिए।
सर्वदा परोपकार में स्वचित्त दीजिए।।
जाति-पाँति की प्रथा वृथा न अब बढ़ाइए।
शुद्ध प्रीति रीति-नीति में प्रतीति लाइए।।
देश के सुधार के सदा उपाय सोचिए।
देश हानि-कारिणी कुचाल शीघ्र मोचिए।। (उ. मा. शि. बो. 2018)

प्रश्न– 1. किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व हमें क्या करना चाहिए?
2. देश के सुधार के लिए हमें क्या-क्या उपाय करने चाहिए?

उत्तर– 1. किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व हमें उसके परिणाम पर विचार करना चाहिए तथा बुद्धि द्वारा उससे होने वाले हानि-लाभ को भी देखना चाहिए।

2. देश के सुधार के लिए हमें देश से प्रेम करना चाहिए। परोपकार में मन लगाना चाहिए तथा जाति-पाँति के भेदभाव को त्याग देना चाहिए।

2.

मेरी भूमि तो है पुण्यभूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र-लोक करें आके आप आरती।
नित्य नये अंकुर असंख्य वहाँ फूटते,
फूल झड़ते हैं, फल पकते हैं, टूटते।
सुरसरिता ने वहीं पाई हैं सहेलियाँ,
लाखों अठखेलियाँ, करोड़ों रंगरेलियाँ।
नन्दन विलासी सुरवृन्द, बहु वेशों में,
करते विहार हैं हिमाचल प्रदेशों में।
सुलभ यहाँ जो स्वाद, उसका महत्त्व क्या ?
दुःख जो न हो तो फिर सुख में है सत्त्व क्या ?
दुर्लभ जो होता है, उसी को हम लेते हैं,
जो भी मूल्य देना पड़ता है, वही देते हैं।
हम परिवर्तनमान, नित्य नये हैं तभी,
ऊब ही उठेंगे कभी एक स्थिति में सभी।
रहता प्रपूर्ण हमारा रंगमंच भी,
रुकता नहीं है लोक नाट्य कभी रंच भी।

प्रश्न– 1. कवि ने पुण्य-भूमि किसे और क्यों कहा है ?
2. पृथ्वीवासियों को 'नित्य नये' क्यों कहा गया है ?

उत्तर—1. कवि ने भारत भूमि को पुण्य-भूमि कहा है क्योंकि उसके आकाश में उदित सैकड़ों नक्षत्र इसकी आरती उतारते प्रतीत होते हैं। यहाँ नित्य नवीन अंकुर फूटने और फल फूलों के झड़ने से जीवन की निरंतरता दिखाई देती है।

2. परिवर्तन सृष्टि का नियम है। धरती पर हर समय परिवर्तन होते रहते हैं। पुराना जाता है उसका स्थान नया ले लेता है। अत: यह संसार नित्य नया बना रहता है। इस कारण पृथ्वीवासियों को नित्य नये कहा गया है।

3. *यह अवसर है, स्वर्णिम सुयुग सुअवसर है यह, खो न इसे नादानी में,*
रंगरलियों में, छेड़छाड़ में, मस्ती में, मनमानी में।
तरुण, विश्व की बागडोर ले तू अपने कठोर कर में,
स्थापित कर रे मानवता बर्बर नृशंस के उर में।
दंभी को कर ध्वस्त धरा पर अस्त-व्रस्त पाखंडों को,
करुणा शान्ति स्नेह सुख भर दे बाहर में, अपने घर में।
यौवन की ज्वाला वाले दे, अभयदान पद दलितों को,
तेरे चरण शरण में आहत जग, आश्वासन-श्वास गहे॥

प्रश्न— 1. विश्व की बागडोर किसके हाथों में शोभा पाती है ? क्यों ?
2. "दे अभयदान पद दलितों को" पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. विश्व की बागडोर तरुणों (युवकों) के हाथ में शोभा पाती है, क्योंकि युवावस्था में दृढ़ता, जोश-उत्साह, शक्ति-सामर्थ्य अपने चरम पर होते हैं। युवाओं में स्थितियों को बदलने की क्षमता होती है।

2. 'दे अभयदान पद दलितों को' पंक्ति से आशय है, सदियों से शोषित समाज के पद-दलित वर्ग को तुम अपनी सुरक्षा में लेकर अभयदान दे दो। अर्थात् उनकी शोषण और अत्याचार से रक्षा करो।

4. *शान्ति नहीं तब तक, जब तक सुखभाग न नर का सम हो,*
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।
ऐसी शान्ति राज करती है, तन पर नहीं हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर, श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर,
न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है, जब तक न्यास न आता,
जैसा भी हो महल, शान्ति का, सुदृढ़ नहीं रह पाता।
कृत्रिम शान्ति सशंक आप अपने से ही डरती है।
खड्ग छोड़ विश्वास किसी का कभी नहीं करती है।

प्रश्न— 1. ''कृत्रिम शान्ति सशंक आप अपने से ही डरती है''— ऐसा क्यों कहा गया है ?
2. 'न्याय' व 'समानता' के आधार पर स्थापित शान्ति का साम्राज्य किन स्थानों व किन भावनाओं पर स्थापित हो जाता है ?

उत्तर—1. जहाँ शान्ति स्वाभाविक रूप से, न्याय के आधार पर, स्थापित नहीं होगी, वह नकली शान्ति होगी। बलपूर्वक शान्ति स्थापित करके व्यक्ति सदा मन ही मन शंकित और भयभीत रहा करता है।

2. जब न्याय और समानता के आधार पर शान्ति स्थापित होती है तो वह मनुष्य के शरीर पर नहीं बल्कि उसके हृदय पर, उसके विश्वासों पर, श्रद्धा और भक्ति पर तथा प्रेमभाव पर राज्य करती है। वह स्थायी होती है।

5.

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में, मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख उसने अपने, भुजबल से ही पाया है।
प्रकृति नहीं डर कर झुकती है, कभी भाग्य के बल से।
सदा हारती वह मनुष्य के उद्यम से, श्रम-जल से।
ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा करते निरुद्यमी प्राणी।
धोते वीर कुअंक भाल का, बहा भ्रुवों से पानी।
भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का।
जिससे रखता दबा एक जन, भाग दूसरे जन का।
वही मनुज के श्रम का शोषण, वही अनय-मय दोहन।
वही मलिन छल नर-समाज से, वही ग्लानिमय अर्जन।
एक मनुज संचित करता है, अर्थ पाप के बल से।
और भोगता उसे दूसरा, भाग्यवाद के छल से।

प्रश्न— 1. 'ब्रह्मा का अभिलेख' का क्या आशय है? उसको कौन पढ़ता है ?
2. 'और भोगता उसे.....छल से'—का आशय प्रकट कीजिए।

उत्तर—1. भाग्य को ब्रह्मा का लेख माना जाता है। ब्रह्माजी ही जन्म से पूर्व मनुष्य का भाग्य लिख देते हैं। इस मान्यता पर परिश्रम से घबराने वाले लोग ही विश्वास करते हैं। वे 'जो भाग्य में लिखा है वही मिलेगा' कहकर परिश्रम से दूर रहते हैं।

2. चालाक लोग दूसरों के साथ छल करते हैं और उनके हक पर स्वयं अधिकार यह कहकर जमा लेते हैं कि यह उनके भाग्य में ही है। इस प्रकार छल-कपट करके, भाग्य का नाम लेकर, चतुर लोग दूसरों के अधिकारों पर डाका डालते हैं।

6.

मैंने झुक नीचे को देखा तो झलकी आशा की रेखा—
विप्रवर स्नान कर चढ़ा सलिल शिव पर दूर्वादल, तंदुल, तिल,
लेकर झोली आए ऊपर देखकर चले तत्पर वानर।
द्विज रामभक्त, भक्ति की आश भजते शिव को बारहों मास।
कर रामायण का पारायण जपते हैं श्रीमन्नारायण।
दुःख पाते जब होते अनाथ, कहते कपियों के जोड़ हाथ।
मेरे पड़ौस के वे सज्जन, करते प्रतिदिन सरिता मज्जन।
झोली से पुए निकाल लिए बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं उधर फिर कर जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
चिल्लाया किया दूर दानव, बोला मैं— 'धन्य, श्रेष्ठ मानव'॥

प्रश्न— 1. कवि ने नीचे क्या देखा? उसे उस दृश्य में क्या बात आशाजनक लगी ?
2. कवि के कथन 'धन्य, श्रेष्ठ मानव' में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. कवि ने पुल से नीचे देखा तो उसे एक ब्राह्मण सज्जन नदी में स्नान करके शिवजी की पूजा-अर्चना करने के पश्चात् ऊपर आते दिखाई दिए। यह देखकर कवि के मन में आशा उत्पन्न हुई कि वह पुल पर बैठे दीन-दुर्बल भिक्षुक को खाने के लिए कुछ देंगे।

2. कवि ने देखा कि विप्र ने पुए बन्दरों को दे दिए और वहाँ बैठे भूखे, दीन-दुर्बल भिक्षुक की ओर देखा भी नहीं। यह देखकर कवि ने व्यंग्यपूर्वक कहा—'धन्य हो, हे श्रेष्ठ मनुष्य!' कवि के इस कथन में मनुष्यों की उस अन्ध आस्था पर करारा व्यंग्य है जो एक भूखे मनुष्य की उपेक्षा कर वानरों को पुए खिलाती है और अपने कल्याण की आशा करती है।

7.

होकर बड़े लड़ेंगे यों, यदि कहीं जान मैं लेती,
कुल-कलंक सन्तान सौर में गला घोंट मैं देती।
लोग निपूती कहते पर यह दिन न देखना पड़ता।
मैं न बन्धनों में सड़ती छाती में शूल न गढ़ता।
बैठी यही विसूर रही माँ, नीचों ने घर घाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला॥
जाति धर्म गृहहीन युगों का नंगा-भूखा-प्यासा आज सर्वहारा तू ही है
एक हमारी आशा ये छल-छंद शोषकों के हैं
कुत्सित, ओछे, गंदे तेरा खून चूसने को ही ये दंगों के फंदे।
तेरा एका, गुमराहों को राह दिखाने वाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला॥

प्रश्न— 1. भारतमाता की व्यथा को अपने शब्दों में संक्षेप में लिखिए।
2. भारत को इन दंगों से मुक्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर—1. भारतमाता देशवासियों के आपस में लड़ने-झगड़ने से दु:खी है। यदि उसे यह पता होता कि उसकी सन्तानें बड़ी होकर आपस में लड़ेंगी तो वह उनका जन्म लेते ही वध कर देती। लोग उसे निपूती कहते परन्तु उसको यह पीड़ा नहीं झेलनी पड़ती। उसको बंधनों में नहीं बँधना पड़ता। दंगों की आग में जलने से भारतमाता बहुत दु:खी है।

2. कवि को आशा है कि जाति, धर्म, गृहहीन सर्वहारा-वर्ग ही अपनी एकता के द्वारा शोषकों के इस षड्यन्त्र का अन्त कर सकता है। भारत की सामान्य गरीब जनता धर्म और जाति की कट्टरता के विरुद्ध है, वह चाहे तो दंगा कराने वालों की योजनाओं को विफल कर सकती है।

8.

तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो,
होंगे लोने नयन उनके, ज्योति-उत्कीर्णकारी,
मुद्रा होगी वर-वदन की मूर्ति सी सौम्यता की,
सीधे-साधे वचन उनके सिक्त होंगे सुधा से।
नीले फूले कमल दल-सी गात की श्यामता है,
पीला प्यारा वरुन कटि में पैन्हते हैं फबीला,
छूटी काली अलक मुख की कान्ति को बढ़ाती,
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती-सी प्रभा है।
साँचे ढाला सकल वपु है दिव्य सौन्दर्यशाली,
सत्पुष्पों-सी सुरभि उसकी प्राण-संपोषिका है।
दोनों कंधे वृषभ-वर से हैं बड़े ही सजीले,
लम्बी बाँहें कलभ-कर-सी शक्ति की पेटिका हैं॥

प्रश्न— 1. 'जलद-तन' कौन है? राधा उनके दर्शन के लिए किसको प्रेरित कर रही है ?
2. राधा ने श्रीकृष्ण की मुख-मुद्रा के बारे में क्या बताया है ?

उत्तर—1. 'जलद-तन' श्रीकृष्ण हैं। बादल के समान साँवला शरीर होने से उनको घनश्याम कहा जाता है। राधा श्रीकृष्ण के पास वायु के माध्यम से अपना संदेश पहुँचाना चाहती है। अत: वह वायु को श्रीकृष्ण के पास जाने की प्रेरणा दे रही है।

2. श्रीकृष्ण की मुख-मुद्रा का वर्णन करते हुए राधा वायु से कहती है कि उनका मुख सौम्यता की मूर्ति जैसा लगता है। सुन्दर वस्त्रों में से उनके युवा शरीर से ज्योति सी प्रकाशित होती है। लटकी हुई काली लटें मुख की शोभा को बढ़ाती हैं तथा वह अमृत के समान मधुर और सरल वचन बोलते हैं।

9. *ओ बदनसीब अन्धो! कमजोर अभागो,*
अब तो खोलो नयन नींद से जागो।
वह अघी ? बाहुबल का जो अपलापी है,
जिसकी ज्वाला बुझ गई, वही पापी है।
जब तक प्रसन्न यह अनल, सुगुण हँसते हैं,
है जहाँ खड्ग, सब पुण्य वहीं बसते हैं।
वीरता जहाँ पर नहीं, पुण्य का क्षय है,
वीरता जहाँ पर नहीं, स्वार्थ की जय है।
तलवार पुण्य की सखी, धर्मपालक है,
लालच पर अंकुश कठिन, लोभ सालक है।
असि छोड़, भीरु बन जहाँ धर्म सोता है,
पावक प्रचण्डतम वहाँ प्रकट होता है।

प्रश्न— 1. भारतवासियों के प्रति कवि के आक्रोश का क्या कारण है ?
2. कवि ने तलवार को पुण्य की सखी और धर्मपालक क्यों कहा है ?

उत्तर—1. भारतवासी लालच में फँसकर अपने पराक्रम तथा वीरता को भुला चुके हैं, फलतः शोषण और दुर्भाग्य उनका पीछा नहीं छोड़ रहा। कवि के मन में इसी कारण उनके प्रति आक्रोश है। वह देशवासियों को अज्ञान की इस नींद से जगाना चाहता है।

2. तलवार वीरता की सूचक है। जब मन में वीरता का भाव नहीं रहता, पापियों और दुष्टों को दण्ड का भय नहीं रहता, तभी समाज में पाप प्रकट होते हैं और धर्म नष्ट हो जाता है। वीरता ही पुण्यों की तथा धर्म की संरक्षिका है। कवि ने इसी कारण तलवार को पुण्य की सखी और धर्मपालक कहा है।

10. *मैं फिर जन्म लूँगा*
फिर मैं
इसी जगह आऊँगा
उचटती निगाहों की भीड़ में
अभावों के बीच
लोगों की क्षत-विक्षत पीठ सहलाऊँगा।
इस समय में
इन अनगिनत अचीन्ही आवाजों में
कैसा दर्द है !
कोई नहीं सुनता
पर इन आवाजों को
और इन कराहों को
दुनिया सुने, मैं यह चाहूँगा।
मेरी तो आदत है
रोशनी जहाँ भी हो
उसे खोज लाऊँगा
कातरता, चुप्पी या चीखें
या हारे हुओं की खीझ
जहाँ भी मिलेगी
उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊँगा।
चाहे इस प्रार्थना-सभा में
तुम सब मुझ पर गोलियाँ चलाओ।
मैं मर जाऊँगा।
लेकिन मैं कल फिर जन्म लूँगा
कल फिर आऊँगा।

प्रश्न— 1. कातरता, चुप्पी या चीखों को सितार पर बजाने का आशय क्या है ?
2. 'प्रार्थना सभा में तुम मुझ पर गोलियाँ चलाओ'—में कवि का संकेत किस ओर है ?

उत्तर—1. गाँधीजी चाहते हैं कि संसार में जहाँ भी लोगों की कातरता, चुप्पी और दुःखभरी चीखें हैं तथा पराजित लोगों के मन में भरी हुई निराशा की खीझ प्रकट होती है, उसको वह सार्वजनिक मंचों पर संवेदना के साथ सुनाना चाहते हैं ।

2. 'प्रार्थना-सभा में तुम मुझ पर गोलियाँ चलाओ'—में कवि का संकेत प्रार्थना-सभा में महात्मा गाँधी के ऊपर चलाई गई गोलियों से है। कवि बताना चाहता है कि गाँधीजी के उपदेश तथा शिक्षा अमर है। उनका प्रेम का संदेश अमिट है। वह मर नहीं सकता।

11. *अर्जुन देखो, किस तरह कर्ण, सारी सेना पर टूट रहा,*
किस तरह पाण्डवों का पौरुष होकर अशंक वह लूट रहा।
देखो, जिस तरफ, उधर उसके ही बाण दिखायी पड़ते हैं,
बस, जिधर सुनो, केवल उसकी हुँकार सुनायी पड़ते हैं।

कैसी करालता! क्या लाघव! कैसा पौरुष! कैसा प्रहार।
किस गौरव से यह वीर द्विरद कर रहा समर-वन में विहार।
व्यूहों पर व्यूह फटे जाते, संग्राम उजड़ता जाता है,
ऐसी तो नहीं कमलवन में भी कुंजर धूम मचाता है।
इस पुरुष-सिंह का समर देख मेरे तो हुए निहाल नयन,
कुछ बुरा न मानो, कहता हूँ मैं आज एक चिर गूढ़ वचन।
कर्ण के साथ तेरा बल भी मैं खूब जानता आया हूँ,
मन ही मन तुझसे बड़ा वीर पर, इसे मानता आया हूँ।
औ' देख चरम वीरता आज तो यही सोचता हूँ मन में।
है भी जो कोई जीत सके, इस अतुल धनुर्धर को रण में?

प्रश्न— 1. श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कर्ण की किस बात के लिए प्रशंसा की है?
2. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कौन-सा गूढ़ वचन बताया?

उत्तर—1. श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कर्ण की युद्धभूमि में प्रदर्शित वीरता के लिए प्रशंसा की है कि वह किस तरह पाण्डवों की सेना पर टूट पड़ा था और उनके सारे पुरुषार्थ को चुनौती दे रहा था।

2. श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह गूढ़ वचन बताया कि वह अर्जुन तथा कर्ण दोनों की वीरता को जानते हैं। वह दोनों के बल से परिचित हैं परन्तु मन ही मन वह कर्ण को अर्जुन से भी बड़ा वीर मानते रहे हैं।

12.

आज की दुनियाँ विचित्र नवीन,
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
हैं बँधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप।
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर सरित्, गिरि, सिन्धु एक समान।
शीश पर आदेश कर अवधार्य
प्रकृति के सब तत्व करते हैं मनुज के कार्य,
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्दगुण अम्बर वहन सन्देश।
नव्य नर की मुष्टि में विकराल,
हैं सिमटते जा रहे दिक्काल।
यह प्रगति निस्सीम! नर का यह अपूर्व विकास।
चरण तल भूगोल! मुट्ठी में निखिल आकाश।
किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;

प्रश्न— 1. मनुष्य की निस्सीम प्रगति के बारे में कवि ने क्या कहा है?
2. 'छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश'—का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. कवि ने कहा है कि मनुष्य ने हर क्षेत्र में असीम प्रगति की है। समस्त धरती को उसने अपने पैरों के तले अर्थात् अपने अधीन कर लिया है और विशाल आकाश को भी अपने वश में कर लिया है। वह धरती-आकाश के समस्त रहस्यों को जान चुका है।

2. विज्ञान के रूप में मनुष्य ने बुद्धि के क्षेत्र में असीम प्रगति की है। सर्वत्र उसकी बुद्धिमत्ता का बोलबाला है। इस बौद्धिक दौड़ में हृदय या मन का संसार कहीं पीछे छूट गया है अर्थात् मनुष्य के प्रति मनुष्य की सहानुभूति, सद्भाव तथा प्रेम आज उपेक्षित हो गए हैं।

13. *मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे*
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी
और फूल-फूलकर मैं मोटा सेठ बनूँगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला !
यह धरती कितना देती है! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को!
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्त्व को!
बचपन में, छिः, स्वार्थ लोभवश पैसे बोकर!
रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ।
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं
जिससे उगल सकें फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की, जीवन श्रम से हँसें दिशाएँ
हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे।

प्रश्न— 1. कवि ने बचपन में क्या किया था? उसका क्या परिणाम हुआ ?
2. 'हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे'—का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. कवि ने बचपन में धरती में कुछ पैसे बोये थे। वह सोचता था कि इससे जो पेड़ उत्पन्न होगा उस पर पैसों के फल लगेंगे और वह मोटा सेठ बन जायेगा। परन्तु उसका प्रयास व्यर्थ गया।

2. कवि कहता है कि दोष धरती का नहीं है। हम ही ठीक बीज नहीं बोते। हम जैसा बीज धरती में डालते हैं, हमें उसका फल वैसा ही प्राप्त होता है। पैसा बोने से पैसे नहीं उगते। हमें समता, क्षमता और ममता के बीज बोने चाहिए ताकि मनुष्यों में परिश्रम और मानवता का भाग जागे।

14. *टुक हिर्स हवा को छोड़ मियाँ मत देस बिदेस फिरे मारा।*
क़ज्जाक़ अजल का लूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा।
क्या बधिया भैंसा बैल शुतर क्या गोनी पल्ला सर मारा।
क्या गेहूँ चावल माठ मटर क्या आग धुँआ औ अंगारा।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा।
गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरा भारी है।
ऐ गाफिल तुझसे भी चढ़ता यह और बड़ा व्यापारी है।
क्या शक्कर मिसरी कंद गरी क्या साँभर मीठा खारी है।
क्या दाख मुनक्का सोंठ मिरिच क्या केसर लौंग सुपारी है
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा।
जब चलते-चलते रस्ते में यह गौंन तेरी ढल जाएगी।
एक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पाएगी।
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बँट जाएगी।
धी पूत जमाई बेटा क्या बंजारन पास न आएगी।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा॥

प्रश्न— 1. 'सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. 'ठाठ' और 'बंजारा' शब्द किसके प्रतीक हैं?

उत्तर—1. कवि ने मनुष्य के जीवन के ध्रुव-सत्य मृत्यु की ओर इन शब्दों में इशारा किया है। जब मृत्यु आती है तो मनुष्य द्वारा जीवन भर संचित किया सब कुछ यहीं छूट जाता है।

2. 'ठाठ' शब्द संसार का सूचक है। जब मनुष्य दुनिया छोड़कर जाता है तो यह संसार तथा इससे सम्बन्धित चीजें यहीं पर ही छूट जाती हैं। 'बंजारा' एक घुमंतू जाति है। बंजारे जगह-जगह भटकते हैं। यहाँ यह शब्द मनुष्य का प्रतीक है। मनुष्य भी इस संसार में बंजारे के समान कुछ समय ही रह पाता है।

15.

उठे राष्ट्र तेरे कन्धों पर
बढ़े प्रगति के प्रांगण में,
पृथ्वी को रख दिया उठाकर
तूने नभ के आँगन में
विजय वैजयन्ती फहरी है जो
जग के कोने-कोने में
उसमें तेरा नाम लिखा है
जीने में बलि होने में!

तेरे बाहु-दण्ड में है वह बल
जो केहर-कटि तोड़ सके,
तेरे दृढ़ स्कन्ध में वह बल
जो गिरि से ले होड़ सके,
यह अवसर है, स्वर्ण सुयुग है,
खो न इसे नादानी में
रँगरेलियों में, छेड़छाड़ में,
मस्ती में, मनमानी में !

प्रश्न— 1. 'उसमें तेरा नाम लिखा है/जीने में बलि होने में'—का क्या आशय है?

2. कवि युवकों को क्या संदेश दे रहा है?

उत्तर— 1. संसार में जो विजय पताका फहरा रही है, वह युवकों की वीरता के फलस्वरूप ही है। युवकों ने ही अपने राष्ट्र के हितार्थ अपना जीवन लगाया है तथा देश की रक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान भी किया है।

2. कवि युवकों को संदेश दे रहा है कि यौवन वह अवस्था है जब युवकों में अपार शक्ति और पराक्रम भरा होता है। इसका उपयोग उनको राष्ट्र की प्रगति तथा उत्थान के लिए करना चाहिए। उनको अपनी शक्ति को रंगरेलियों, मस्ती, छेड़खानी तथा मनमाने अनुचित आचरण में नष्ट नहीं करना चाहिए।

16.

सिंही की गोद से
छीनता रे शिशु कौन?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण? रे अंजान !
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है,

किन्तु क्या,
योग्य जन जीता है।
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है।
स्मरण करो बार-बार—
जागो फिर एक बार !
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व-भार—
जागो फिर एक बार।

प्रश्न— 1. आशय स्पष्ट कीजिए—'पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है, गीता है।'

2. कवि भारतीयों को क्या प्रेरणा दे रहा है ?

उत्तर—1. कवि कहता है कि संसार में वही जीवित रहता है जो पराक्रमी तथा सक्षम होता है। यह सिद्धान्त पश्चिम के वैज्ञानिक डार्विन का नहीं है (सरवाइवल ऑफ द फिटैस्ट)। यह तो भारतीय महान् ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता में पहले ही बताया जा चुका है। जीवित रहना है तो हमको शक्तिशाली बनना ही होगा।

2. कवि भारतीयों से कायरता, दीनता और भय त्यागकर वीर पराक्रमी बनने के लिए कह रहा है। तुम ब्रह्म हो, यह पूरा ब्रह्माण्ड तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं है। तुम अज्ञान की नींद से जागो और अपना सच्चा रूप पहचानो।

17.

तोड़ मत विश्वास की दीवार पगले !
फिर नहीं यह बन सकेगी।
ठीक है, दीवार बाधा है मनोरथ की
किन्तु बकरी बाड़ को खाकर बचेगी?
स्वार्थ के रथ पर चढ़ो मत, रोक दो गति
इस तरह इंसान की दुनियाँ चलेगी ?
चल रही है जिन्दगी विश्वास-बल से

तोड़ मत निर्मोह होकर स्नेह बन्धन
सत्य है, बन्धन प्रगति को रोकते हैं
काटकर जड़ पेड़ कैसे जी सकेगा ?
सरल मन कच्चे घड़े-सा
टूटकर जुड़ता नहीं है।
खींचने से अधिक टूटे तार वाली
नेह की वीणा कभी बजती नहीं है।

प्रश्न— 1. दीवार को किसमें बाधक बताया गया है ? फिर भी उसको बचाना क्यों जरूरी है ?
2. प्रेम की वीणा कब नहीं बजती ?

उत्तर—1. दीवार मनोरथों के पूरा होने में बाधक होती है। वह स्वतन्त्रता को रोकती है। फिर भी बाह्य संकट से सुरक्षा के लिए दीवार की सुरक्षा जरूरी है। बकरी यदि काँटों की बाड़ को खाने लगेगी तो उसको वन्यपशुओं से बचाना संभव नहीं होगा।

2. प्रेम वीणा के समान है। वीणा के तारों को ज्यादा कसने पर वे टूट जाते हैं तथा उनसे संगीत के स्वर नहीं निकलते। इसी प्रकार अधिक तर्क-वितर्क, खींचतान तथा परस्पर अविश्वास और शंका प्रेम में बाधक होते हैं। इनसे प्रेम नष्ट हो जाता है।

18.

खूब गए
दूधिया निगाहों में
फटी बिवाइयों वाले खुरदरे पैर
धँस गए
कुसुम कोमल मन में
गुद्दल घट्ठों वाले कुलिश कठोर पैर
दे रहे थे गति
रबड़विहीन ठूँठ पैडलों को
चला रहे थे
एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र

कर रहे थे मात्र त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
नाप रहे थे धरती का अनहद फासला
घंटों के हिसाब से ढोए जा रहे थे!
देर तक टकराए
उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगी फटी बिवाइयाँ
खूब गई दूधिया निगाहों में
धँस गई
कुसुम कोमल मन में।

प्रश्न— 1. 'घंटों के हिसाब से ढोए जा रहे थे' से कवि किस कटु सत्य की ओर संकेत करता है ?
2. कवि को क्यों लगता है कि वह रिक्शाचालक के बिवाई पड़े पैरों को भूल नहीं पाएगा ?

उत्तर—1. रिक्शाचालक को सवारियों से जो पैसा मिल रहा था वह स्थान की दूरी के अनुसार नहीं था। सवारियाँ उसको घण्टों के हिसाब से पैसा दे रही थीं। इससे रिक्शाचालक का शोषण हो रहा था तथा उसको परिश्रम के अनुसार मजदूरी नहीं मिल रही थी।

2. कवि का मन रिक्शाचालक के शोषण-उत्पीड़न को देखकर करुणा से भर उठा है। उसे लगता है कि वह कभी रिक्शाचालक के बिंवाई-फटे पैरों को भूल नहीं पायेगा।

19.

थका-हारा सोचता मन-सोचता मन।
उलझती ही जा रही है एक उलझन।
अँधेरे में अँधेरे से कब तलक लड़ते रहें
सामने जो दिख रहा है, वह सच्चाई भी कहें।
भीड़ अंधों की खड़ी खुश रेवड़ी खाती

तिमिर के दरबार में दरबान-सा तन जा।
थका हारा, उठा गर्दन-जूझता मन
दूर उलझन! दूर उलझन! दूर उलझन!
चल खड़ा हो पैर में यदि लग गई ठोकर
खड़ा हो संघर्ष में फिर रोशनी होकर

अँधेरे के इशारों पर नाचती-गाती।
थका हारा सोचता मन-सोचता मन।
भूखी प्यासी कानाफूसी दे उठी दस्तक
अंधा बन जा झुका दे तम-द्वार पर मस्तक।
रेवड़ी की बाँट में तू रेवड़ी बन जा
मृत्यु भी वरदान है संघर्ष में प्यारे
सत्य के संघर्ष में क्यों रोशनी हारे।
देखते ही देखते तम तोड़ता है दम
और सूरज की तरह हम ठोंकते हैं खम।

प्रश्न— 1. थके-हारे मन की उलझन क्या थी ?
2. 'भूख-प्यास की विवशता के परामर्श' का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. थके-हारे मन की उलझन यह थी कि मनुष्य संघर्ष के निराशापूर्ण वातावरण को मजबूती से झेलता रहे अथवा भ्रष्टाचार के अन्धकार के सामने घुटने टेककर संसार का सुख प्राप्त करे।

2. भूख-प्यास से व्याकुलता और विवशता का आशय है कि भूख-प्यास से व्याकुल लोगों को अन्याय या अंधकार के आगे समर्पित कर देने के लिए विवश हो रहा था।

20.

जहाँ चित्त भय से शून्य हो
जहाँ हम गर्व से माथा ऊँचा करके चल सकें
जहाँ ज्ञान मुक्त हो
जहाँ विशाल वसुधा को
खण्डों में विभाजित कर
छोटे और छोटे आँगन बनाए जाते हों।
जहाँ हर वाक्य दिल की गहराई से निकलता हो,
जहाँ हर दिशा में कर्म के अजस्र स्रोत फूटते हों,
निरन्तर बिना बाधा के बहती हो
जहाँ मौलिक विचारों की सरिता
तुच्छ आचारों की मरु रेती में न खोती हों
जहाँ पर कर्म, भावनाएँ, आनंदानुभूतियाँ
सभी तुम्हारे अनुगत हों।
हे प्रभु! हे पिता! अपने हाथों से कड़ी थपकी देकर
सोते हुए
इस स्वतन्त्र भारत को जगाओ।

प्रश्न— 1. कवि कैसे भारत की आकांक्षा व्यक्त कर रहा है ?
2. कवि स्वतन्त्र भारत को सोता हुआ क्यों कहता है ?

उत्तर—1. कवि ऐसे स्वतंत्र भारत की आकांक्षा व्यक्त करता है जहाँ मौलिक विचारों को फलने-फूलने की स्वतंत्रता हो। समाज के तुच्छ आचार विचार उन पर बंदिश न लगा पाते हों। कवि चाहता है कि स्वतंत्र भारत में कर्म, भावनाओं और आनन्द की अनुभूति सुलभ हो।

2. स्वतन्त्र भारत के नागरिक अकर्मण्य, सद्भावना से रहित, दोषपूर्ण विचारों और आचरण से देश की एकता को क्षति पहुँचाने वाले हैं। उन्हें देश के उत्थान और श्रेष्ठ भविष्य की चिन्ता नहीं है। इस कारण कवि ने स्वतन्त्र भारत को सोता हुआ कहा है।

21.

घाटी के ऊपर झुक
फैला-सा अंबर ज्यों
सजल-सलज-छलनामय शब्दों से
बेमन दुलार रहा,

दे रहा हो थपकी-सी
आ रही हो झपकी-सी घाटी को!
या फिर खुद घाटी ने मानव का दर्द जान,
मानव को अपने ही अंतर का भाग मान,
लोरी के कपसीले बादल बिखराए हों—
कुहरे के झीने-से
कबूतर के डैने-से पुल ये बनाए हों,
जिससे कि मानव भी पा सके सिद्धि-स्वर्ग
वैसे मानव-मन का हर कोना रीता है, घायल है
आशा-निराशा, दुराशा-हताशा के दृश्य सभी नाटकीय-
ऐसे ही मानव को घाटी बहलाती है,
बरसाकर पानी अभिसिंचन करवाती है।

प्रश्न— 1. बादल की तुलना किससे की गई है और क्यों ?

2. कवि के अनुसार घाटी ने अपने निवासियों का दर्द दूर करने के लिए क्या-क्या उपाय किए हैं ?

उत्तर—1. बादल की तुलना एक ऐसे व्यक्ति से की गई है जो बेमन से और झूठे लाड़ भरे शब्दों की लोरी से किसी बालक को थपकियाँ देकर सुलाने का दिखावा कर रहा हो। क्योंकि बादल केवल गरज रहा और छाया कर रहा है, बरस नहीं रहा है।

2. कवि की कल्पना के अनुसार, घाटी ने अपने ही अंग, मानवों को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए, ये लोरी सुनाने वाले बादल आकाश में बिखेर दिए हैं या मानव को स्वर्ग-सुख दिलाने के लिए, कबूतरों के पंखों जैसे ये धरती से आकाश तक (बादलों के) पुल बना दिए हैं।

22. *मैंने फूल को सराहा*
देखो कितना सुन्दर है, हँसता है।
तुमने उसे तोड़ा
और जूड़े में खोंस लिया
मैंने बौर को सराहा,
"देखो, कैसी भीनी गंध है!"
तुमने उसे पीसा
और चटनी बना डाली
मैंने कोयल को सराहा,
देखो, कैसा मीठा गाती है!
तुमने उसे पकड़ा
और पिंजरे में डाल दिया!
एक युग पहले की बातें ये
आज याद आती नहीं क्या तुम्हें
क्या तुम्हारे बुझे मन, हत-प्राण का है यही भेद नहीं
हँसी, गंध, गीत जो तुम्हारे थे
वे किसी ने तोड़ लिए, पीस दिए, कैद किए?
मुक्त करो!
मुक्त रहो!
जन्म भर की यह यातना भी
इस ज्ञान के समक्ष तुच्छ है
हँसी फूल में नहीं
गंध बौर में नहीं
गीत कण्ठ में नहीं
हँसी, गंध, गीत—सब मुक्ति में हैं।
मुक्ति ही सौन्दर्य का अन्तिम प्रमाण है।

प्रश्न— 1. फूल, बौर तथा कोयल-कण्ठ के प्रति कवि और उसकी प्रेयसी के दृष्टिकोण में क्या भिन्नता है?

2. कविता के अनुसार हँसी, गंध और गीत सब मुक्ति में ही हैं, कैसे?

उत्तर—1. फूल, बौर तथा कोयल-कण्ठ के सम्बन्ध में कवि और उसकी प्रेयसी के दृष्टिकोण में बहुत भिन्नता है। कवि फूल, बौर और कोयल को मुक्त रखकर उनसे आनन्द प्राप्त करना चाहता है लेकिन उसकी प्रेयसी का इन सभी के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। वह उनकी स्वतन्त्रता छीनकर उन्हें अपने उपयोग में लाकर प्रसन्न होती है।

2. प्रकृति को बन्धन में बाँधना उचित नहीं है। उसके मुक्त सौन्दर्य का दर्शन ही जीवन का आनन्द है। फूल के खिलने, बौर के महकने तथा कोयल के गाने का सच्चा आनन्द उनको मुक्त रहने देकर ही प्राप्त किया जा सकता है। यही 'जियो और जीने दो' का सर्व सुखकारी जीवन-दर्शन है।

23.

मत रोक मुझे भयभीत न कर, मैं सदा कटीली राह चला।
पथ-पथ मेरे पतझारों में नव सुरभि भरा मधुमास पला।
फिर कहाँ डरा पाएगा यह पगले! जर्जर संसार मुझे।
इन लहरों के टकराने पर, आता रह-रह कर प्यार मुझे॥
मैं हूँ अपने मन का राजा, इस पार रहूँ उस पार चलूँ।
मैं मस्त खिलाड़ी हूँ ऐसा जी चाहे जीतूँ हार चलूँ॥
मैं हूँ अनाथ, अविराम अथक, बंधन मुझको स्वीकार नहीं।
मैं नहीं अरे ऐसा राही, जो बेबस-सा मन मार चलूँ॥
कब रोक सकी मुझको चितवन, मदमाते कजरारे घन की।
कब लुभा सकी मुझको बरबस, मधु-मस्त फुहारें सावन की।
जो मचल उठें अनजाने ही अरमान नहीं मेरे ऐसे—
राहों को समझा लेता हूँ सब बात सदा अपने मन की॥
इन उठती-गिरती लहरों का कर लेने दो शृंगार मुझे।
इन लहरों के टकराने पर आता रह-रह कर प्यार मुझे॥

प्रश्न— 1. 'अपने मन का राजा' होने के दो लक्षण कविता से चुनकर लिखिए।
2. कविता का केन्द्रीय भाव लिखिए।

उत्तर—1. अपने मन का राजा होने के दो लक्षण निम्नलिखित हैं—

(i) वह अपने मन का स्वामी है। वह अपनी मर्जी के अनुसार काम करने को स्वतन्त्र है। (ii) वह चाहे तो इस पार रह सकता है और यदि वह उस पार जाना चाहता है, तो जा सकता है।

2. कवि निर्भीक है। वह संसार की कठिनाइयों का सामना करने से नहीं डरता। वह स्वयं निर्णय करता है कि उसे किन परिस्थितियों में क्या करना है। उसको कोई बंधन स्वीकार नहीं। वह किसी नारी तथा प्रकृति के सौन्दर्य के आकर्षण में नहीं फँसता। वह विवेकशील, कर्मठ और स्वतन्त्रचेता है।

24.

क्या रोकेंगे प्रलय मेघ ये, क्या विद्युत्-घन के नर्तन,
मुझे न साथी रोक सकेंगे, सागर के गर्जन-तर्जन।
मैं अविराम पथिक अलबेला रुके न मेरे कभी चरण,
शूलों के बदले फूलों का किया न मैंने मित्र चयन।
मैं विपदाओं में मुसकाता नव आशा के दीप लिए,
फिर मुझको क्या रोक सकेंगे जीवन के उत्थान-पतन।
मैं अटका कब, कब विचलित मैं, सतत डगर मेरी संबल,
रोक सकी पगले कब मुझको यह युग की प्राचीर निबल।
आँधी हो, ओले-वर्षा हों, राह सुपरिचित है मेरी,

फिर मुझको क्या डरा सकेंगे ये जग के खंडन-मंडन।
मुझे डरा पाए कब अंधड़, ज्वालामुखियों के कंपन,
मुझे पथिक कब रोक सके हैं अग्निशिखाओं के नर्तन।
मैं बढ़ता अविराम निरन्तर तन-मन में उन्माद लिए,
फिर मुझको क्या डरा सकेंगे, ये बादल-विद्युत् नर्तन।

प्रश्न— 1. कविता में आए मेघ, विद्युत, सागर की गर्जना और ज्वालामुखी किनके प्रतीक हैं? कवि ने उनका संयोजन यहाँ क्यों किया है?

2. 'युग की प्राचीर' का क्या तात्पर्य है? उसे कमजोर क्यों बताया गया है?

उत्तर—1. कविता में आए मेघ, विद्युत, सागर की गर्जना और ज्वालामुखी जीवन में आने वाली कठिनाइयों तथा मार्ग की बाधाओं के प्रतीक हैं। कवि ने उनका संयोजन यहाँ यह प्रकट करने के लिए किया है कि वह पथ की बाधाओं से डरता नहीं, वह निर्भीकतापूर्वक अविचलित होकर उनसे टक्कर लेता है और आगे बढ़ता है।

2. 'युग की प्राचीर'—जीवन में समय-समय पर आने वाली कठिनाइयाँ अथवा मनुष्य की प्रगति को रोकने वाली सामाजिक रीतियाँ और परम्पराएँ। युग की दीवार को कमजोर कहने का आशय यह है कि जीवन की बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ कवि का साहस भंग नहीं कर सकतीं।

25.

जब-जब बाँहें झुकीं मेघ की, धरती का तन-मन ललका है,
जब-जब मैं गुजरा पनघट से, पनिहारिन का घट छलका है।
सुन बाँसुरिया सदा-सदा से हर बेसुध राधा बहकी है,
मेघदूत को देख यक्ष की सुधियों में केसर महकी है।
क्या अपराध किसी का है फिर, क्या कमजोरी कहूँ किसी की,
जब-जब रंग जमा महफिल में जोश रुका कब पायल का है।
जब-जब मन में भाव उमड़ते, प्रणय श्लोक अवतीर्ण हुए हैं,
जब-जब प्यास जगी पत्थर में, निर्झर स्रोत विकीर्ण हुए हैं।
जब-जब गूँजी लोकगीत की धुन अथवा आल्हा की कड़ियाँ
खेतों पर यौवन लहराया, रूप गुजरिया का दमका है।

प्रश्न— 1. मेघों के झुकने का धरती पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा क्यों ?

2. आशय स्पष्ट कीजिए—'खेतों पर यौवन लहराया, रूप गुजरिया का दमका है।'

उत्तर—1. मेघों के झुकने पर धरती का तन-मन ललक उठता है अर्थात् आकाश में पानी बरसाते हुए बादलों के छा जाने से पृथ्वी वर्षा के जल में भीगने के लिए लालायित हो उठती है, क्योंकि उसको वर्षाकालीन बादलों के आने का इंतजार रहता है जिससे फुहारों में भीगकर अपने तप्त तन को शीतल कर सके।

2. इस पंक्ति का आशय यह है कि जब भी गाँवों में लोकगीत या आल्हा गाए जाते हैं तो खेतों में कार्य करते किसान यौवन की मस्ती से भर जाते हैं और ग्रामीण युवतियाँ सुन्दर लगने लगती हैं।

26.

पथ बंद है पीछे अचल पीठ पर धक्का प्रबल।
मत सोच बढ़ चल तू अभय, ले बाहु में उत्साह-बल।
जीवन-समर में सैनिको, सम्भव असम्भव को करो।
पथ-पथ निमन्त्रण दे रहा आगे कदम, आगे कदम।
ओ बैठने वाले तुझे देगा न कोई बैठने।

पल-पल समर नूतन सुमन-शैया न देगा लेटने।
आराम सम्भव है नहीं जीवन सतत् संग्राम है
बढ़ चल मुसाफिर धर कदम, आगे, आगे कदम।
ऊँचे हिमानी शृंग पर, अंगार के भ्रू-भंग पर
तीखे कगारे खंग पर, आरम्भ कर अद्भुत सफर
औ नौजवाँ, निर्माण के पथ मोड़ दे, पथ खोल दे
जय-हार में बढ़ता रहे आगे कदम, आगे कदम।

प्रश्न— 1. आशय स्पष्ट कीजिए—जीवन सतत् संग्राम है।
2. कविता का केन्द्रीय भाव दो-तीन वाक्यों में लिखिए।

उत्तर—1. जीवन एक निरन्तर चलने वाले युद्ध की तरह है। मनुष्य का जीवन आने वाली कठिनाइयों तथा बाधाओं से निरन्तर संघर्ष करते हुए व्यतीत होता है। इसमें विश्राम का कोई अवसर नहीं है।

2. जीवन एक युद्ध की तरह है। उसमें विश्राम का अवसर नहीं है। युवकों को चाहिए कि वे मन में उत्साह पैदा करें तथा मार्ग की बाधाओं को कुचलकर आगे बढ़ें। उन्हें असम्भव को सम्भव करके नवनिर्माण का मार्ग खोलना है। विश्राम को भूल जाना है।

27.

पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो।
न पुरुषार्थ बिना कुछ स्वार्थ है,
न पुरुषार्थ बिना परमार्थ है।
समझ लो यह बात यथार्थ है—
कि पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है।
भुवन में सुख-शान्ति भरो, उठो।
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो।
न पुरुषार्थ बिना वह स्वर्ग है,
न पुरुषार्थ बिना अपवर्ग है।
न पुरुषार्थ बिना क्रियता कहीं,
न पुरुषार्थ बिना प्रियता कहीं।
सफलता वर-तुल्य वरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो।
न जिसमें कुछ पौरुष हो यहाँ—
सफलता वह पा सकता कहाँ ?
अपुरुषार्थ भयंकर पाप है,
न उसमें यश है, न प्रताप है।
न कृमि-कीट समान मरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो॥

प्रश्न— 1. 'सफलता वर-तुल्य वरो उठो'—पंक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. अपुरुषार्थ भयंकर पाप है—कैसे ?

उत्तर—1. सफलता एक वरदान के समान है। उसे प्राप्त करने के लिए कर्म करना आवश्यक है। बिना श्रम के जीवन में सफलता प्राप्त नहीं होती। अतः पुरुषार्थ द्वारा सफलता प्राप्त करो।

2. अपुरुषार्थ अर्थात् पौरुषहीनता एक भयंकर पाप है क्योंकि पुरुषार्थ के बिना जीवन में सफलता नहीं मिलती। अपुरुषार्थ से न यश मिलता है न पराक्रम। पुरुषार्थहीन मनुष्य कीड़े-मकोड़ों के समान जीता-मरता है।

28.

यों खेल करोगे कब तक तुम असहायों से
कब तक अफीम आशा की हमें खिलाओगे ?
बरबाद हो गयी फसल कहीं जोती बोयी,
क्या बैठ अकेले ही मरघट पर गाओगे ?
विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो,
आसन्न मौत की गहन फाँस गड़ जायेगी।
यदि बाँध बाँधने से पहले जल सूख गया,
धरती की छाती में दरार पड़ जायेगी।
सदियों की कुर्बानी यदि यों बेमोल बिकी,
जमुहाई लेने में खो गया सवेरा यदि।
जनता पूर्णिमा मनाने की जब तक सोचे,
घिर गया अमावस का अम्बर में घेरा यदि
इतिहास न तुमको माफ करेगा याद रहे,
पीढ़ियाँ तुम्हारी करनी पर पछतायेंगी।
पूरब की लाली में कालिख पुत जायेगी,
सदियों में फिर क्या ऐसी घड़ियाँ आयेंगी ?

प्रश्न— 1. असहायों से खेल कौन कर रहा है ? आशा को अफीम क्यों कहा है ?

2. देश के विकास के लिए कवि किस बात को आवश्यक मानता है ?

उत्तर—1. भारत के नेता और शासक भारत की असहाय जनता को विकास और उन्नति की आशा दिलाकर बहका रहे हैं। वे उसकी भावनाओं से खेल रहे हैं। अफीम के नशे में मनुष्य वास्तविकता को भूल जाता है। उत्तम भविष्य की आशा दिला दिलाकर बुरी दशा से जनता का ध्यान हटाया जा रहा है।

2. विकास के लिए आवश्यक है कि जनता का देश के नेतृत्व और शासन में विश्वास बना रहे। शासक-प्रशासक कोरी आशाओं और सपनों से जनता को न बहलाएँ बल्कि समय रहते विकास की योजनाएँ कार्यान्वित करें।

29.

आओ, मिलें सब देश बांधव हार बनकर देश के,
साधक बनें, सब प्रेम से सुख शान्तिमय उद्देश्य के।
क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो,
बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनों की कहो।
रक्खो परस्पर मेल, मन से छोड़कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता।
सब बैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो।
है भिन्नता में खिन्नता ही, एकता धारण करो।
है कार्य ऐसा कौन-सा साधे न जिसको एकता,
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता।
दो एक एकादश हुए किसने नहीं देखे सुने,
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अंक होते दश गुने।

प्रश्न— 1. कवि ने भारत की साम्प्रदायिक विविधता की तुलना किससे की है ?

2. 'दो एक एकादश हुए' से कवि का क्या आशय है ?

उत्तर—1. कवि ने भारत की साम्प्रदायिक विविधता की तुलना अनेक प्रकार के फूलों से बनी हुई माला से की है। जिस प्रकार अनेक प्रकार के फूलों से एक माला बन सकती है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी भी एकता से रह सकते हैं।

2. 'दो एक एकादश हुए' में कवि ने ''एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं' मुहावरे का काव्यात्मक प्रयोग किया है। इसका आशय है— एकता से देश और समाज की शक्ति बढ़ती है।

30.

तुम भरे-पुरे, तुम हृष्ट-पुष्ट, ऐ, तुम समर्थ कर्ता-हर्ता !
तुमने देखा है क्या बोलो हिलता-ढुलता कंकाल एक ?
वह था उसका ही खेत, जिसे उसने उन पिछले चार माह,
अपने शोणित को सुखा-सुखा भर-भर कर अपनी विवश आह!
तैयार किया था औ' घर में
थी रही रुग्ण पत्नी कराह !
उसके थे बच्चे तीन, जिन्हें माँ-बाप का मिला प्यार न था,
जो थे जीवन के व्यंग्य, जिन्हें मरने का भी अधिकार न था,
थे क्षुधाग्रस्त बिलबिला रहे, मानो वे मोरी के कीड़े,
वे निपट घिनौने महापतित, बौने, कुरूप, टेढ़े-मेढ़े !

उसका कुटुम्ब था भरा-पुरा आहों से हाहाकारों से;
फाकों से लड़-लड़कर प्रतिदिन, घुट-घुटकर अत्याचारों से।
तैयार किया था उसने ही
अपना छोटा-सा एक खेत!

प्रश्न— 1. किसान ने अपने खेत को किस प्रकार तैयार किया था ?
2. 'उसका कुटुम्ब था भरा-पूरा आहों से हाहाकारों से' कहने का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—1. किसान ने अपने खेत को पिछले चार महीने मेहनत करके तैयार किया था। उसने खेत में गेहूँ की फसल उगाई थी और भूख-प्यास से आह भरते हुए अपना खून सुखाकर उस फसल को तैयार किया था। उसने अपनी बीमार पत्नी तथा भूखे-प्यासे बच्चों पर भी ध्यान नहीं दिया था।

2. किसान का कुटुम्ब हाहाकारों तथा आहों से भरापूरा था। आशय यह है कि किसान के परिवार के सभी सदस्य भूख-प्यास तथा शोषण से व्याकुल थे। उनके मुँह से सदा आहें निकलती थीं। 'हाहाकारों तथा आहों से भरापूरा कुटुम्ब' में कवि ने अभावों से त्रस्त बड़े परिवार पर पैना व्यंग्य किया है।

31.

शुभ्र किरीट हिमालय तेरा,
सागर है चरणों का चेरा,
हृदय देवताओं का डेरा,
शस्य श्यामला रूप तुम्हारा, शीतल चूनर धानी।
काश्मीर की सुषमा न्यारी,
धरा-स्वर्ग की उपमा प्यारी,
मेवा और केसर की क्यारी,
वह काश्मीर हमारा जिसके हम सब हैं अभिमानी।
राम कृष्ण की कर्मभूमि यह,
'गौतम', 'जिन' की धर्म-भूमि यह
गुरुनानक की मर्मभूमि यह,
आर्य, विवेकानन्द, यहाँ हैं परम सत्य के ज्ञानी।
राणा और शिवा से बेटे,
जो थे असि धारों पर लेटे,
आन-बान के कभी न हेटे,
शीश हथेली पर धर जूझे, ऐसे थे बलिदानी।

प्रश्न— 1. इस कविता के आधार पर भारतमाता के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. 'जो थे असि धारों पर लेटे' का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—1. भारतमाता के माथे पर हिमालयरूपी मुकुट है। उसने हरियाली के रूप में धानी चादर ओढ़ रखी है। समुद्र उसकी चरण-वन्दना करता है। उसके हृदय में देवताओं का निवास है।

2. इस काव्यांश का आशय है कि राजा प्रताप और वीर शिवाजी ने शत्रुओं की तलवारों का निर्भीकता से सामना किया था। उनका जीवन तलवार की धार पर चलने के समान वीरता से परिपूर्ण था।

32.

नए युग में विचारों की नई गंगा बहाओ तुम,
कि सब कुछ जो बदल दे ऐसे तूफाँ में नहाओ तुम।
अगर तुम ठान लो तो आँधियों को मोड़ सकते हो,
अगर तुम ठान लो तारे गगन के तोड़ सकते हो

अगर तुम ठान लो तो विश्व के इतिहास में अपने—
सुयश का एक नव अध्याय भी तुम जोड़ सकते हो,
तुम्हारे बाहुबल पर विश्व को भारी भरोसा है—
उसी विश्वास को फिर आज जन-जन में जगाओ तुम।
पसीना तुम अगर इस में अपना मिला दोगे,
करोड़ों दीन-हीनों को नया जीवन दिला दोगे।
तुम्हारी देह के श्रम-सीकरों में शक्ति है इतनी
कहीं भी धूल में तुम फूल सोने के खिला दोगे।
नया जीवन तुम्हारे हाथ का हल्का इशारा है।
इशारा कर वही इस देश को फिर लहलहाओ तुम।

प्रश्न— 1. यदि भारतीय नवयुवक दृढ़ निश्चय कर लें तो क्या-क्या कर सकते हैं ?
2. आशय स्पष्ट कीजिए—
कहीं भी धूल में तुम फूल सोने के खिला दोगे।

उत्तर—1. भारतीय युवक यदि दृढ़ निश्चय कर लें तो आँधियों को मोड़ सकते हैं, आकाश के तारे तोड़ सकते हैं तथा संसार के इतिहास में यशस्वी लोगों में अपना नाम लिखा सकते हैं।

2. 'कहीं भी धूल में तुम फूल सोने के खिला दोगे—' का आशय है कि नवयुवकों में अपार शक्ति होती है। वह जिस स्थान पर रहकर श्रम करते हैं, वह स्थान सफलता और सम्पन्नता से भर उठता है। वे अपने श्रम से अनुपजाऊ भूमि में भी लाभकारी फसलें पैदा कर सकते हैं?

33.

आज सब प्रतिमान दागी हो गए।
क्या करें उपमान दागी हो गए।
अब किसे सौंपो जलधि-अभियान ये
आज सब जलयान दागी हो गए।
शुभ्र शिखरों पर चढ़ी है कालिमा।
तमस ने घेरीं प्रभाती लालिमा।
भर गई अपराध बोधी धुंध सी,
पंथ के संधान दागी हो गए।
आज रोएँ या हँसें इस बिन्दु पर?
नाव टूटी ले खड़े हम सिन्धु पर।
प्रात से पहले घिरी इस साँझ में,
दिवस के दिनमान दागी हो गए।

प्रश्न— 1. आज देश के सामने कौन सी विकट समस्या है ?
2. 'आज सब जलयान दागी हो गए' से कवि का क्या आशय है ?

उत्तर—1. आज देश के सामने देश के नेताओं और मार्गदर्शकों के भ्रष्ट हो जाने की विकट समस्या है। जनता के सामने कोई ऐसा आदर्श पुरुष नहीं जिसे सामने रखकर वह सही मार्ग चुन सके।

2. कवि का इस पंक्ति से आशय है कि सभी राजनीतिक दलों में भ्रष्ट और अपराधी लोग जमे हुए हैं। ऐसे में देश को समस्याओं से पार लगाने का दायित्व वह किसे सौंपे ?

34.

ये खूनी सड़कें, ये कातिल राजमार्ग,
ये निर्दोष खून के प्यासे 'हाइवे'
जहाँ रोज तड़पती हैं
रक्त रंजित धूल धूसरित मानव देहें।
जहाँ हर रोज बिलखती हैं
सिर की सिन्दूरी रेखाएँ, लुटी हुई गोदें,
पितृत्व, सहोदरता, मित्रताएँ।
लेकिन फिर भी नहीं रुकता
त्वरा का, रफ्तार का गूढ़ उन्माद।
मृत्युन्मुखी उन्मत्त दौड़
वक्त के साथ नहीं रुकती आत्मघाती होड़।
यह कैसी प्रगति है। यह कैसा है विकास
वाहनों से बरसता यह मानवी विनाश!

प्रश्न— 1. कवि ने सड़कों, राजमार्गों और हाइवे को क्या कहा है और क्यों ?

2. कवि ने प्रगति और विकास पर क्या व्यंग्य किया है ?

उत्तर—1. कवि ने सड़कों, राजमार्गों और हाइवे को खूनी, कातिल और रक्त का प्यासा कहा है क्योंकि इन पर रोज वाहनों की दुर्घटनाएँ होती हैं जिसमें निर्दोष लोग मारे जाते हैं।

2. कवि ने प्रगति और विकास के नाम पर लोगों के इतनी संख्या में रोज मारे जाने पर व्यंग्य किया है। प्रगति और विकास से तो लोगों को सुखी और सुरक्षित होना चाहिए न कि अकाल मृत्यु का ग्रास बनना चाहिए।

35.

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र। दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पड़ा ताल
दर्पण सा फैला है विशाल
गिरि के गौरव गाकर झर-झर
मद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुंदर
झरते हैं झाग भरे निर्झर।

प्रश्न— 1. पर्वत का आकार कैसा है ? वह अपने सहस्र नेत्रों से क्या देख रहा है ?

2. रेखांकित पंक्तियों का भावार्थ लिखिए।

उत्तर—1. पर्वत का आकार मेखलाकार है । वह अपने हजार नेत्रों से नीचे फैले जल की परछाईं में अपने महान् आकार को देख रहा है। उसके चरणों में दर्पण के समान विशाल ताल (मैदान) विस्तृत है।

2. भावार्थ—कवि पहाड़ से बहने वाले निर्झरों का वर्णन करते हुए कहता है कि झरने अपने झागों से भरे जल के साथ पहाड़ से नीचे झरते हैं तो ऐसा लगता है मानो वे मोतियों की लड़ियों से बनी सुंदर मालाएँ हों।

अभ्यास के लिए कुछ पद्यांश

- निम्नलिखित पद्यांशों को पढ़कर उनके नीचे लिखे हुए प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

1.

रोटी उसकी, जिसका अनाज, जिसकी जमीन, जिसका श्रम है;
अब कौन उलट सकता स्वतन्त्रता का सुसिद्ध, सीधा क्रम है।
आजादी है अधिकार परिश्रम का पुनीत फल पाने का,
आजादी है अधिकार शोषणों की धज्जियाँ उड़ाने का।
गौरव की भाषा नई सीख, भिखमंगों की आवाज बदल,
सिमटी बाँहों को खोल गरुड़, उड़ने का अब अंदाज बदल।
स्वाधीन मनुष्य की इच्छा के आगे पहाड़ हिल सकते हैं;
रोटी क्या ? ये अंबर वाले सारे सिंगार मिल सकते हैं।

प्रश्न– 1. आजादी क्यों आवश्यक है? सच्चे अर्थों में रोटी पर किसका अधिकार है?
2. कवि व्यक्ति को क्या परामर्श देता है?

2.

पूर्व चलने के, बटोही, बाट की पहचान कर ले।
कौन कहता है कि स्वप्नों को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें अपनी उमर, अपने समय में,
और तू कर यत्न भी तो मिल नहीं सकती सफलता,
ये उदय होते लिए कुछ ध्येय नयनों के निलय में,
किन्तु जग के पन्थ पर यदि स्वप्न दो तो सत्य सौ हैं,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो, सत्य का भी ज्ञान कर ले;
पूर्व चलने के, बटोही, बाट की पहचान कर ले।
स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को, ललकती उन्मुक्त छाती,
रास्ते का एक काँटा पाँव का दिल चीर देता,
रक्त की दो बूँद गिरतीं, एक दुनिया डूब जाती,
'आँख में हो स्वर्ग लेकिन पाँव पृथ्वी पर टिके हों',
कंटकों की इस अनोखी सीख का सम्मान कर ले;
पूर्व चलने के, बटोही, बाट की पहचान कर ले।

प्रश्न– 1. सपने देखने से कवि का क्या तात्पर्य है?
2. 'आँख में हो स्वर्ग लेकिन पाँव पृथ्वी पर टिके हों' का आशय स्पष्ट कीजिए।

3.

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो,
उसको क्या, जो दन्तहीन
विषहीन विनीत सरल हो।
तीन दिवस तक पंथ माँगते
रघुपति सिन्धु किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द
अनुनय के प्यारे-प्यारे।
उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।
सिन्धु देह धर 'त्राहि-त्राहि'
करता आ गिरा शरण में,
चरण पूज, दासता ग्रहण की
बँधा मूढ़ बन्धन में।
सच पूछो तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि-वचन संपूज्य उसी का
जिसमें शक्ति विजय की।

प्रश्न– 1. सिन्धु 'त्राहि-त्राहि' करते हुए किसके चरणों में आ गिरा तथा क्यों?
2. प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने क्या प्रेरणा दी है?

4.

पुजारी! भजन, पूजन, साधन, आराधना
इन सब को किनारे रख दे।
द्वार बन्द करके देवालय के कोने में क्यों बैठा है?
आँखें खोलकर जरा देख तो सही

तेरा देवता देवालय में नहीं है।
जहाँ मजदूर पत्थर फोड़कर रास्ता तैयार कर रहे हैं,
तेरा देवता वहीं चला गया है।
मुक्ति! मुक्ति अरे कहाँ है?
कहाँ मिलेगी मुक्ति!
अपने सृष्टि-बंध से प्रभु स्वयं बँधे हैं।
ध्यान-पूजा को किनारे रख दे
फूल की डाली को छोड़ दे
वस्त्रों को फटने दे, धूलि-धूसरित होने दे
उनके साथ काम करते हुए पसीना बहने दे।

प्रश्न— 1. मुक्ति के विषय में कवि ने क्या बताया है।
2. वस्त्रों को फटने देने, धूल-धूसरित होने देने, पसीना बहाने से कवि का क्या आशय है?

5.

थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?
कहते आते थे यही अभी नरदेही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'
अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता—
'है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।'
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा!
युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा—
'धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'

प्रश्न— 1. 'माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. 'धिक्कार उसे था महा-स्वार्थ ने घेरा'—किसको किस महा-स्वार्थ ने घेर लिया था?

❑❑